योगविद्या

वर्ष 4 अंक 7
जुलाई 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 62 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : गुरु मण्डल

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-8: गुरु-शिष्य परम्परा की तीन पीढ़ियाँ

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

गुरु-भक्ति योग

गुरु-भक्ति योग संदेह, शंका, अविश्वास और अहंकार से व्याप्त इस युग के लिए विशेष रूप से सुयोग्य योग है। इसकी शक्ति असीम है और प्रभाव अमोघ।

कठोर राजसिक अहंकार साधकों का सबसे बड़ा शत्रु है। गुरु-भक्ति योग इस अहंकार को नष्ट करने का सर्वोत्तम उपाय है। जिस प्रकार एक विशेष प्रकार के कीटाणु को खत्म करने के लिए एक विशेष प्रकार की रासायनिक दवा प्रयोग में लाई जाती है, उसी प्रकार अविद्या और अहंकार रूपी रोगों के निवारण के लिए गुरु-भक्ति योग एक अचूक नुस्खा है। सचमुच धन्य हैं वे लोग जो इस योग को अपनाते हैं, क्योंकि उन्हें अन्य योग मार्गों में भी सिद्धि मिलती है। उन्हें कर्म, भक्ति, ध्यान और ज्ञान योग के सर्वश्रेष्ठ फल स्वत: ही प्राप्त हो जाते हैं।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 7 • जुलाई 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 गुरु और दीक्षा
9 गुरु-प्रेरणा में जीना
13 दम, दान, दया, समर्पण और आत्मभाव
17 गुरु की खोज
23 दूध में छिपा मक्खन
24 योग का वास्तविक प्रयोजन
37 प्रत्याहार में प्रवेश
45 गुरु पूर्णिमा का संकल्प
49 गुरु-लीला
53 शिक्षक बनाम गुरु
56 गुरु की छाँव में
58 भर लो घट

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

गुरु और दीक्षा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आपको अपना मन्त्र अपने गुरु से ही प्राप्त करना चाहिए। इसका शिष्य पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। मन्त्र के साथ गुरु अपनी शक्ति भी शिष्य को देता है। यदि आपको गुरु नहीं मिले हैं, तो आप अपनी पसन्द के किसी भी मन्त्र का प्रतिदिन श्रद्धा और भाव के साथ मानसिक जप कर सकते हैं। इसका भी अत्यधिक शुद्धिकारक प्रभाव पड़ता है। आपको अवश्य ही ईश्वर दर्शन होगा।

भगवान शिव पत्तिनाथर के साथ कुछ समय तक रहे, परन्तु वह उन्हें पहचान नहीं सका। जाते समय भगवान ने उसके लिये एक संदेश छोड़ा, जिसमें लिखा था, 'तुम्हारी मृत्यु के बाद एक सुई भी तुम्हारे साथ नहीं जाएगी।' इससे पत्तिनाथर की आँखें खुल गईं, मानो वे गुरु के वचन हों। भगवान कृष्ण श्री कंडिया के रूप में कुछ समय एकनाथ के साथ रहे और उनकी सेवा की, परन्तु एकनाथ उन्हें पहचान नहीं सके। एक साधक के लिये अपने सच्चे स्वामी को देखकर पहचान पाना बहुत कठिन है। करुणावश गुरु ही अपने आप को किसी रूप में प्रकट करते हैं।

साधक को भगवान की मदद बहुत ही रहस्यमय तरीके से मिलती है। एक बार एकनाथ ने एक आकाशवाणी सुनी– 'देवगिरि में जनार्दन पंत से मिलो। वह तुम्हें सही मार्ग दिखाएँगे।' उन्होंने वैसा ही किया, उन्हें अपने गुरु मिल गये। तुकाराम को उनका मन्त्र 'राम कृष्ण हरि' स्वप्न में प्राप्त हुआ। उन्होंने इस मन्त्र का जप किया और भगवान कृष्ण के दर्शन किये। भगवान कृष्ण ने नामदेव को उच्च दीक्षा

के लिये मल्लिकार्जुन के एक संन्यासी के पास भेजा। रानी चुडाला कुम्भ मुनि के रूप में अपने पति शिखिध्वज के सामने प्रकट हुईं और उन्हें कैवल्य मार्ग में दीक्षित किया। मधुर कवि ने लगातार तीन दिनों तक आकाश में एक प्रकाश देखा। इससे उन्हें प्रेरणा मिली और वे अपने गुरु के पास पहुँच गये, जो त्रिन्नावेली में समाधि में बैठे थे। विल्वमंगल एक नाचने वाली औरत चिन्तामणि से अत्यधिक आसक्त थे। बाद में वही उनकी गुरु बनी। तुलसीदास को एक अदृश्य शक्ति ने हनुमानजी का दर्शन करने की प्रेरणा दी, जिनकी कृपा से वे श्री रामजी का दर्शन कर सके।

दीक्षा का अर्थ किसी के कान में मन्त्र बोलना नहीं होता है। यदि कोई व्यक्ति किसी के विचारों से प्रेरित होता है तो इसका मतलब है कि वह उनसे दीक्षित हो गया है। यदि कोई साधक किसी सन्त की शिक्षाओं को पढ़कर उन्हें अपनाता है तथा सत्य के मार्ग पर चलता है, तो वह सन्त ही उसके गुरु हैं। गुरु साधकों को अपने पत्र, विचार आदि किसी भी प्रकार से दीक्षित कर सकते हैं।

दीक्षा का स्वरूप सभी साधकों के लिये एक जैसा नहीं होता। साधक की उत्कण्ठा और प्रकृति के अनुसार प्रभु उसके गुरु की व्यवस्था करते हैं। वामदेव को अपनी माँ के गर्भ में ही आत्मज्ञान प्राप्त हो गया था। मीरा को भगवान कृष्ण की मूर्त्ति से प्रेरणा मिली। नरसी मेहता विचित्र तरीके से प्रभु के प्रेमी हो गये। दत्तात्रेय को चौबीस गुरुओं से ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ, जिनके बारे में श्रीमद् भागवत पुराण में लिखा है। धन और स्त्री के प्रति गहरी आसक्ति भी कुछ लोगों में तीव्र वैराग्य का कारण बनती है। अवन्ती के ब्राह्मण और बिल्वमंगल के साथ यह बात सच साबित हुई।

भगवान ने गीता में कहा है, *'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते'*, अर्थात् 'मैं अपने भक्तों को बुद्धियोग प्रदान करता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त करते हैं।' दत्तात्रेय की बुद्धि बहुत ही सूक्ष्म और कुशाग्र थी, जिसकी मदद से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। जड़ भरत जन्मजात सिद्ध थे। इन्द्र ने 101 वर्षों तक प्रजापति की सेवा की, तब जाकर उन्हें दीक्षा मिली। जनक को याज्ञवल्क्य और अष्टावक्र ने दीक्षित किया। श्वेतकेतु को उसके पिता उद्दालक ने नौ बार दीक्षित किया। त्र्यम्बकेश्वर में निवृत्तिनाथ के ऊपर एक शेर ने हमला किया, जिससे बचने के लिये वे ज्ञानीनाथ की गुफा में घुस गये, जो मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य थे। ज्ञानीनाथ ने उन्हें योग मार्ग में दीक्षित किया। दीक्षा, प्रेरणा और ज्ञान की प्राप्ति साधक के व्यक्तिगत प्रयासों तथा निष्ठा पर निर्भर है। जब उसके धैर्यपूर्ण और अनवरत संघर्ष की समाप्ति होती है, तब सही समय पर ईश्वर की कृपा बरसती है।

योगी मिलारेप्पा की तरह कुछ लोगों को दीक्षा के पहले गुरु की कड़ी सेवा करनी पड़ती है, जबकि कुछ लोगों को बिना प्रयास अचानक ही दीक्षा मिल जाती है। यह साधक के विकास एवं उसकी आध्यात्मिक साधना पर निर्भर है। मिलारेप्पा को गुरु सेवा के दौरान कड़े संघर्ष से गुजरना पड़ा। दीक्षा के पूर्व उसे कई अतिमानवीय

साहसिक कार्यों को अंजाम देना पड़ा। प्राचीन काल के ऋषि-मुनि अपने शिष्यों पर विश्वास करने के पहले उनकी कड़ी परीक्षा लेते थे। वे अन्तर्प्रेरणा से जानते थे कि व्यक्ति दीक्षा के योग्य है या नहीं। नवदीक्षितों को गायों की देखभाल, वन से लकड़ी लाना, गुरु के वस्त्र धोना आदि कार्य दिया जाता था, जिसे आज के साधक तुच्छ कार्य समझते हैं। श्वेतकेतु, इन्द्र और सत्यकेतु जैसे शिष्यों के लिये प्रत्येक कर्म गुरु की पूजा या योग का साधन था। उनके लिये कोई कर्म तुच्छ नहीं था। उन्होंने नि:स्वार्थ रूप से सब कुछ अपने गुरु को समर्पित किया। इसीलिये शीघ्र ही उनका चित्त शुद्ध हुआ तथा उन्होंने वेद का ज्ञान प्राप्त किया एवं अन्त में आत्मज्ञान भी प्राप्त किया।

गौतम ने अपने एक शिष्य सत्यकाम जाबाल को चार सौ कमजोर गायें देते हुए उनकी देखभाल करने तथा उनकी सँख्या एक हजार होने पर उन्हें लौटाने को कहा। सत्यकाम दीर्घकाल तक वन में रहे। गुरु आश्रम आने के पहले वायु, अग्नि तथा सूर्य देवों ने सत्यकाम को ब्रह्मज्ञान प्रदान किया। जब गौतम ने सत्यकाम के चेहरे पर ब्रह्मज्ञान की दिव्य आभा देखी, तो उन्हें आश्चर्य हुआ।

अष्टावक्र ने राजा जनक को पलक झपकने से कम समय में दीक्षित किया। कुछ गुरु अपने शिष्य को देखकर ही दीक्षा दे देते हैं। श्री शंकर ने तोटक को अपने संकल्प से ही प्रेरणा दी। अत: दैवी कृपा का स्वरूप क्या होगा, यह साधक की योग्यता, क्षमता तथा शुद्धता पर निर्भर है, जिससे वह शान्ति और आनन्द की परमावस्था को प्राप्त करता है।

साधक को हर जगह से प्राप्त होने वाली आध्यात्मिक शिक्षाओं के प्रति सजग होना चाहिए। उसके अज्ञान को दूर करने में जो भी मदद करे, वह उसका शिक्षक है। परन्तु जो साधक की आध्यात्मिक उन्नति को गति प्रदान करता है तथा उसके विकास में प्रमुख भूमिका निभाता है, वह सच्चा सद्गुरु ही होता है। गुरु की कृपा प्राप्त करने से पहले साधक को अपने में पात्रता का विकास करना चाहिए। दैवी कृपा तभी प्राप्त होती है जब साधक में सच्ची उत्कण्ठा और पात्रता हो।

श्री शंकराचार्य या मधुसूदन सरस्वती किसी भी साधक को उसकी योग्यतानुसार मार्ग में दीक्षित कर सकते थे। साधक के सूक्ष्म अवलोकन से गुरु यह जान लेते हैं कि उसकी रुचि, स्वभाव और क्षमता क्या है, तथा उसके बाद उसके लिये उचित मार्ग का निर्णय करते हैं। यदि साधक का हृदय शुद्ध नहीं है तो गुरु उसे वर्षों तक नि:स्वार्थ सेवा करने को कहेंगे। उसके बाद जो मार्ग उसके लिये उचित होगा, उसमें उसे दीक्षित करेंगे।

भक्त सन्त साधक को श्रद्धा एवं भक्ति के मार्ग में, ज्ञानी सन्त वेदान्त के महावाक्यों में और हठयोगी या राजयोगी अपने विशिष्ट मार्ग में ही शिष्य को दीक्षित कर सकते हैं। परन्तु एक पूर्ण ज्ञानी या पूर्ण योगी किसी भी मार्ग में दीक्षा दे

सकते हैं। जब कोई साधक, जो ज्ञान मार्ग में चलना चाहता है, किसी भक्त सन्त के पास आता है तो वे उसे किसी उचित गुरु के पास भेज देते हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं वेदान्तिक अद्वैतता का अनुभव नहीं किया है। परन्तु एक पूर्ण ज्ञानी गुरु साधक को भक्ति मार्ग में भी दीक्षित कर सकते हैं, क्योंकि वे इस जन्म में या पूर्व जन्म में सगुण उपासना का अनुभव कर चुके हैं। जब तक कि गुरु करुणावश स्वयं उजागर नहीं करते हैं, साधक के लिये यह जानना बहुत ही कठिन है कि किस योग मार्ग से उन्होंने पूर्णता प्राप्त की है।

उच्च साधकों के अलावा अन्यों को गुरु की दीर्घ और धैर्यपूर्वक सेवा के बाद ही दीक्षा मिलती है। गुरु एवं शिष्य, दोनों को ही एक-दूसरे के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित होना चाहिए। शिष्य को गुरु के आदर्शों और सिद्धान्तों की गहरी समझ होनी चाहिए तथा गुरु को शिष्य की त्रुटियों और कमजोरियों को जानने का विवेक होना चाहिए। गुरु को शिष्य की आन्तरिक प्रकृति को जानने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। शिष्य को गुरु के सामने अपनी किसी त्रुटि या कमजोरी को नहीं छिपाना चाहिए। गुरु को यह अधिकार होना चाहिए कि वह शिष्य को कष्टों की अग्नि में तपाकर उसकी परीक्षा कर सके, जब तक कि उन्हें शिष्य पर पूर्ण विश्वास न हो जाए।

सेवा के दौरान शिष्य को गुरु के निकट सम्पर्क में रहना चाहिए तथा उनके सभी अच्छे गुणों को आत्मसात् करने का प्रयास करना चाहिए। शिष्य को विचार, वाणी या कर्म से कभी गुरु में दोष ढूँढने का प्रयास नहीं करना चाहिए। शिष्य में यदि

दोष-दृष्टि प्रबल है तो वह गुरु से कुछ नहीं सीख पाएगा तथा उसकी आध्यात्मिक प्रगति भी रुक जाएगी। प्रथमत: शिष्य को गुरु के सामने अपनी कमजोरियों को स्वीकार करना चाहिए। तभी गुरु मार्ग की बाधाओं और मोहजालों को प्रभावी और प्रबल तरीकों से दूर कर सकते हैं।

मनुष्य रूप में गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। उनके ऊपरी आवरण को देखकर आपको यह नहीं समझना चाहिए कि वे सामान्य व्यक्ति हैं। यदि आप श्रद्धा एवं विश्वास से अपने गुरु की सेवा करते हैं तो दीक्षा और साक्षात्कार आपको क्षणमात्र में हो जाएगा।

सद्गुरु नहीं होने पर वरिष्ठ संन्यासी साधक, जो दीर्घकाल से आध्यात्मिक मार्ग में चल रहे हों तथा गुरु की सेवा कर चुके हों, नवसाधकों की मदद कर सकते हैं। वे उनके उपगुरु होंगे। यदि ऐसे वरिष्ठ संन्यासी भी न मिलें, तो साधकों को शंकर, दत्तात्रेय आदि जैसे आत्मज्ञानी सन्तों की लिखित शिक्षाओं का पालन करना चाहिए। वे उनकी तस्वीर रखकर श्रद्धा एवं विश्वास से उनकी पूजा कर सकते हैं। इससे साधक को प्रेरणा मिलेगी और उचित समय आने पर हो सकता है गुरु उन्हें स्वप्न में दीक्षित कर दें। सच्चे साधक को रहस्यमय तरीके से मदद मिलती है। सभी परिस्थितियाँ शीघ्र ही सकारात्मक हो जाती हैं और वह शान्ति, आनन्द एवं अमरता को प्राप्त करता है।

गुरु के आदेशों का अक्षरश: पालन करते हुए शिष्य उनकी तरह ही बन जाता है। जो अपने गुरु के आदेशों का पालन नहीं करता, अपनी ही मनमर्जी करता है, वह कदापि शिष्य नहीं हो सकता। शिष्य वह है जो अपने गुरु के निर्देशों का अक्षरश: और भावश: पालन करता है तथा जनसाधारण में उनकी शिक्षाओं का आजीवन प्रचार करता है। ऐसे शिष्यों तथा उनके गुरुओं की जय हो!

आप सभी को ब्रह्मविद्या गुरुओं, भक्तों और योगियों का आशीष प्राप्त हो! आप अमरता के आनन्द को इस जन्म में ही प्राप्त करें!

गुरु-प्रेरणा में जीना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक जीवन में गुरु और शिष्य के बीच बड़ा महत्त्वपूर्ण और निकट सम्बन्ध होता है। गुरु मात्र शिक्षक नहीं हैं। योग में गुरु का तात्पर्य अज्ञानरूपी अंधकार को ज्ञान द्वारा मिटाने वाले व्यक्ति से है। इसलिए गुरु को शिक्षक या प्रोफेसर समझने की भूल नहीं करनी चाहिए।

ज्ञान प्राप्ति के दो माध्यम हैं। एक है बुद्धि के द्वारा और दूसरा अन्तर्प्रज्ञा के द्वारा। शिक्षक मात्र बौद्धिक ज्ञान दे सकते हैं, किन्तु उनके माध्यम से आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। जबकि गुरु इतना समर्थ होता है कि वह अपने शिष्य को बौद्धिक ज्ञान और अन्तर्ज्ञान, दोनों प्रदान कर सकता है। शिष्य वह है जो सीखने के लिये उत्सुक हो। यदि आप गुरु के पास कुछ सीखने के उद्देश्य से जाते हैं, तो आप शिष्य कहलायेंगे।

चूँकि गुरु बौद्धिक ज्ञान प्रदान करने के साथ आत्मसाक्षात्कार करा सकते हैं, इसलिए शिष्य में भी बौद्धिक ज्ञान के साथ अन्तर्ज्ञान को आत्मसात् करने की क्षमता होनी चाहिए। यहाँ याद रखने वाली एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हर व्यक्ति शिष्य नहीं होता। अधिकतर लोग केवल बौद्धिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अन्तर्ज्ञान की समझ नहीं होती। उनकी चेतना और उनकी आत्मा भी आत्मसाक्षात्कार के अनुभव के लिए तैयार नहीं रहती।

गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध ठीक वैसा होता है जैसा बिजली और बल्ब का। गुरु आध्यात्मिक शक्ति है और शिष्य उस शक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम। यह आवश्यक है कि शिष्य अपनी चेतना को विकसित करे। समय आने पर उसके भीतर विकसित चेतना आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति में सहायक होगी।

गुरु और शिष्य वस्तुत: एक हैं, दो नहीं। शिष्य की चेतना गुरु से जुड़ी रहती है। इसे भक्ति कहते हैं। भक्ति के स्तर पर गुरु और शिष्य एक-दूसरे से संयुक्त रहते हैं। नियमित साधना से पवित्रता आती है, मन के विकार धुल जाते हैं तथा शिष्य अपने भीतर गुरु को देख सकता है।

एक शिष्य के लिए गुरु बाहर भी होता है और अन्दर भी। बाहरी गुरु उसकी भक्ति का एक पक्ष होता है और अन्दर का गुरु उसकी आध्यात्मिक साधना का अन्य पक्ष। जब शिष्य गुरु का ध्यान करता है तब उसका संपर्क अन्दर के गुरु से स्थापित होता है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में गुरु का महत्त्व निर्विवाद है। शिष्य को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसे साधना में और भी प्रगति करनी है। उसे आत्मसाक्षात्कार की प्राप्ति तभी हो सकती है जब उसकी साधना उच्चकोटि की हो।

जब झील का पानी निर्मल होता है तभी उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलकता है। ठीक उसी प्रकार जब शिष्य का हृदय निर्मल होगा तभी उसमें अपने गुरु की महिमा प्रतिबिम्बित होगी। संसार में तीन प्रकार के गहन सम्बन्ध होते हैं। सर्वोच्च सम्बन्ध मनुष्य और ईश्वर के बीच का होता है। यह सांसारिकता से सर्वथा परे होता है। माता और संतान, भाई और बहन, पति और पत्नी—इनके बीच का सम्बन्ध सांसारिक अनुभवों पर आधारित होता है। परन्तु गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में उपर्युक्त सभी सम्बन्धों का समावेश हो जाता है। गुरु-शिष्य सम्बन्ध सांसारिक अनुभवों से बना होता है और साथ ही सांसारिकता से परे भी होता है। एक स्तर पर वे पृथक् दिखते हैं, उनमें से एक ज्ञानी है तो दूसरा अज्ञानी, परन्तु सूक्ष्म स्तर पर उनमें एकत्व रहता है।

गुरु की महिमा और शिष्य की महानता का योग तथा तंत्र की साधना में बड़ा महत्त्व होता है। शिष्य तथा गुरु का दृष्टिकोण तथा उनका व्यवहार महत्त्वपूर्ण है। दोनों एक-दूसरे को पूर्ण रूप से स्वीकार करें और परस्पर अभिन्नता स्थापित करने का प्रयास करें। शिष्य या गुरु का अहंकार दोनों में कदापि निकटता नहीं आने देगा। गुरु के लिए शिष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है और शिष्य के लिए गुरु भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

जिस क्षण आप योग या तंत्र का अभ्यास प्रारंभ करते हैं, आप शिष्यत्व में प्रवेश करते हैं। यह सच है कि प्रारंभ में आप पुस्तकें पढ़कर अथवा लोगों से सुनकर योग या तंत्र का अभ्यास करते हैं, परन्तु कुछ समय पश्चात् एक ऐसी स्थिति आती है जब गुरु तथा आप के बीच परस्पर सम्पर्क आवश्यक हो जाता है।

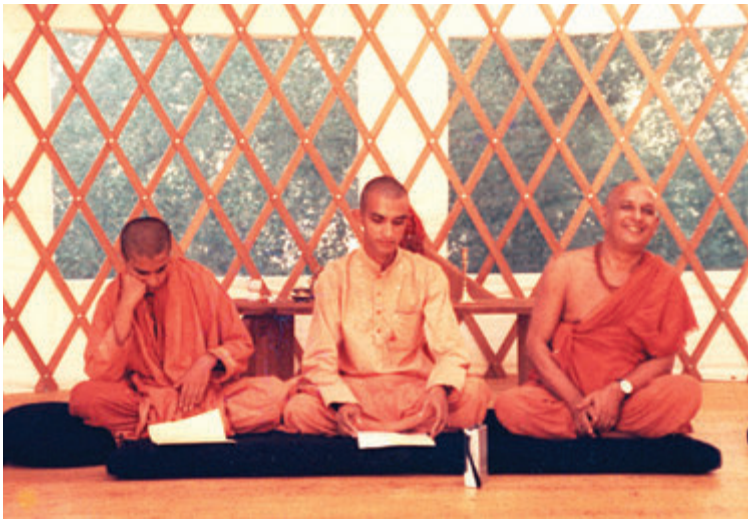

जब आप आध्यात्मिक पथ पर यात्रा प्रारंभ करते हैं तो आपमें प्रेरणा तथा उत्साह रहता है, क्योंकि यह यात्रा बाह्य स्तर से प्रारम्भ होती है, जिससे आप भली-भांति परिचित हैं। लेकिन जब आप इस मार्ग पर आगे बढ़ते हैं तो ऐसे स्तरों पर पहुँचते हैं जो आपके लिए अनजाने तथा अछूते होते हैं। यहाँ आपमें नितांत अकेलेपन का भाव उत्पन्न होता है तथा अनेक विस्मयकारी अनुभव होते हैं। यहाँ के दृश्य और अनुभव इतने आश्चर्यचकित कर देने वाले होते हैं कि आप समझ ही नहीं पायेंगे कि आप क्या देख रहे हैं।

ऐसे समय में जब आपके मन, मस्तिष्क, चेतना तथा अनुभव के क्षेत्रों में महान् रूपान्तरण होता है, आप किससे जाकर पूछेंगे, 'यह सब क्या है?' यदि आप भिन्न-भिन्न लोगों के सामने अपनी समस्या रखेंगे तो निश्चय ही आपको अलग-अलग उत्तर मिलेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि आपका मन भ्रमित हो जायेगा। जिन लोगों के समक्ष आप अपनी समस्या रखते हैं, वे न तो आपको जानते-समझते हैं और न ही आप उन्हें। फिर वे आपके अनुभव को कैसे समुचित ढंग से समझ पायेंगे? इसलिए आपको गुरु की आवश्यकता पड़ती है। आप उन्हें जानते हैं तथा वे आपको। आपका शरीर, मन तथा आत्मा सब उनके लिए परिचित होते हैं। इसलिए उनके द्वारा आपकी समस्या का समाधान अचूक और पूर्ण होगा।

यह भी बहुत आवश्यक है कि गुरु जीवित हों। कभी-कभी अपने ही अज्ञान अथवा अहंकार के कारण लोग जीवित गुरु के प्रति अरुचि प्रकट करते हैं। इसी अहंकार के कारण वे किसी के समक्ष नतमस्तक होने में अपनी हेठी समझते हैं। देखा जाए तो यह हमारे जीवन की एक भारी विडम्बना है। क्या हम अपनी इन्द्रियों, वासनाओं तथा क्षणिक प्रलोभनों के प्रति समर्पण नहीं करते? लेकिन जब हमसे गुरु के पवित्र चरणों में समर्पण करने के लिए कहा जाता है, तब हमारा अहम् तथा व्यक्तित्व विद्रोह कर बैठता है।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूँ जो किसी परायी स्त्री पर जी-जान से आसक्त था तथा उसपर अपार धन खर्च करता था। उसके पीछे वह अपनी पत्नी तथा बच्चों तक की परवाह नहीं करता था। एक बार वह मुझे ट्रेन में मिला। मैंने उससे गुरु सम्बन्धी चर्चा प्रारम्भ की। वह बोला 'मेरा अपना एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। फिर मैं कैसे अपने व्यक्तित्व का समर्पण कर दूँ?' चूँकि मैं उसके बारे में सब कुछ जानता था, मैंने उससे तत्काल पूछा, 'जब गुरु का सवाल आया तो तुम कहते हो तुम्हारा स्वतंत्र व्यक्तित्व है। परन्तु जहाँ तक उस महिला का प्रश्न है, यह व्यक्तित्व और अहम् कहाँ चला जाता है?'

ऐसा विरोधाभास हम सबके साथ जुड़ा है। जब हम गुरु की चर्चा करते हैं तो अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के विलोप हो जाने की संभावना से भयभीत हो उठते हैं, लेकिन इस जीवन के विस्तृत वीराने में खुद के गुम हो जाने से किंचित भयभीत

नहीं हैं। मेरी राय में मनुष्य के जीवन में समर्पण के दो महत्त्वपूर्ण क्षण आते हैं। पहला वह जब हम अपनी वासनाओं, सनकों, प्रलोभनों आदि के समक्ष घुटने टेक देते हैं। इस प्रकार का समर्पण प्राय: हर व्यक्ति जाने-अनजाने करता रहता है। दूसरे प्रकार का समर्पण गुरु के प्रति होता है। पहले प्रकार के समर्पण के परिणामस्वरूप दु:ख, पीड़ा, हताशा तथा निराशा मिलती है, जबकि दूसरे प्रकार के समर्पण का परिणाम आनन्दमय होता है। आप समझने लगते हैं कि अब आप अकेले नहीं है। कोई है जो आपका हितैषी एवं मंगलाकांक्षी है। उसकी अहैतुकी कृपा आपको सदैव मिलती रहेगी तथा वह आपसे भिन्न नहीं है।

शिष्य का यह अनुभव गुरु के प्रति उसके पूर्ण समर्पण का फल होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि शिष्य का गुरु के प्रति व्यवहार कैसा हो। मेरी दृष्टि में उसके व्यवहार का मात्र एक स्वरूप होना चाहिए—उसका हर विचार, वाणी और कर्म गुरु की पवित्र स्मृति एवं प्रेरणा द्वारा परिचालित होना चाहिए। आप जानते हैं न मोटरगाड़ी कैसे चलती है? जब आप उसके स्टीयरिंग को दायीं ओर घुमाते हैं, तो गाड़ी भी दाहिनी ओर मुड़ती है। जब उसे बायीं ओर घुमाते हैं तो गाड़ी भी बायीं ओर मुड़ती है। यदि इससे उलटा होने लगे तो बताइए आप क्या करेंगे? आप उसे मरम्मत के लिए तुरंत मेकैनिक के पास भेज देंगे। इसी तरह जब तक शिष्य गुरु के अनुकूल आचरण करता है, तब तक सब ठीक रहता है। परन्तु जैसे ही वह गुरु के विपरीत जाने लगता है, उसे भी मोटरगाड़ी की तरह मरम्मत की जरूरत पड़ती है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन में गुरु अपरिहार्य है तथा यह शिष्य के अपने हित में है कि वह सत्यनिष्ठा के साथ गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करता रहे।

—'योग प्रदीप-2' से उद्धृत

दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातु:
स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्य: स नयति यदहो स्वर्णतामश्मसारम् ।
न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरु:स्वीयशिष्ये
स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वाऽलौकिकोऽपि॥

इस त्रिलोकी में ज्ञानदाता सद्गुरु की कोई उपमा नहीं देखी गई। यदि उन्हें पारस की उपमा दी जाए तो वह लोहे को केवल सोना बना देता है—उसे पारस नहीं बनाता। किन्तु सद्गुरु तो अपने युगल चरणों का आश्रय लेने वाले शिष्य को अपने ही समान बना देते हैं। इसलिए वे उपमारहित और अलौकिक हैं।

—आदिगुरु शंकराचार्य, वेदान्तसुधा

दम, दान, दया, समर्पण और आत्मभाव

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

उपनिषदों में एक कहानी आती है कि एक देवता, एक मनुष्य और एक दानव प्रजापति ब्रह्मा जी से आदेश और उपदेश प्राप्त करने के लिए उनके पास जाने का प्रयास करते हैं। जब वे लोग अपनी यात्रा कर रहे थे, तो यात्रा के दौरान उन्हें बादलों की गर्जना सुनाई देती है और बादलों की गर्जना में उन्हें प्रजापति ब्रह्मा जी का आदेश भी प्राप्त होता है। उस आदेश को ग्रहण करके तीनों अपने-अपने लोक लौट जाते हैं।

जब इनकी जात वालों ने इन तीनों से पूछा कि तुम्हें कौन-सा संदेश मिला है तो देवताओं का प्रतिनिधि कहता है कि बादलों की गर्जना में मैंने एक शब्द सुना—दमध्वम्, दमध्वम्, दमध्वम्। मतलब दमन करो। मनुष्यों का प्रतिनिधि कहता है—दनध्वम्, दनध्वम्, दनध्वम्। मतलब दान करो। और दानवों का प्रतिनिधि कहता है—दयध्वम्, दयध्वम्, दयध्वम्। दया करो।

देवता, मनुष्य और दानव, इन तीनों ने बादलों की गर्जना में अलग-अलग आदेश सुना—दमन करो, दान करो और दया करो। ये तीन वाक्य हमारी भारतीय संस्कृति के नींव बनते हैं। यहीं से आध्यात्मिकता की शुरुआत होती है। हमारी संस्कृति में आध्यात्मिकता की शुरुआत आत्मा और परमात्मा से नहीं होती बल्कि आध्यात्मिक जीवन का आरम्भ होता है जब मनुष्य इन तीन विचारों को अपने जीवन में अपनाता है।

अगर तुम्हें इंजीनियरिंग की डिग्री लेनी है तो डिग्री लेने के पहले तुम्हें प्राईमरी और सैकेण्डरी स्कूल में जाना पड़ेगा। हर क्लास में पास होते हुए अन्त में तुम कॉलेज में प्रवेश करोगे। कॉलेज में इंजीनियरिंग पढ़ने के बाद ही डिग्री मिलेगी। यही सिद्धान्त मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन पर भी लागू होता है।

लोग सोचते हैं कि आध्यात्मिक जीवन में आदमी को कुछ नहीं करना है, केवल ध्यान लगाना है, भगवान का स्मरण करना है। अगर इतना सरल होता तो आज तक जितने भी लोगों ने ध्यान लगाया है और भगवान का स्मरण किया है, वे सब आत्मज्ञानी होते। लेकिन ऐसी बात नहीं है। सब कोई सीधे कॉलेज में प्रवेश लेने के लिए प्रयास करते हैं, प्राईमरी और सैकेण्डरी क्लास में कोई नहीं जाता है। आप जैसे बुद्धिजीवी कहते हैं प्राईमरी क्लास तो भई मेरे लिए है नहीं, मैं तो बड़ा हो गया हूँ। बुरा नहीं मानना पर ये बुद्धिजीवी के नहीं, बुद्धुजीवी के लक्षण हैं।

बुद्धिजीवी तो क्रम के अनुसार चलता है, पर जो बुद्धुजीवी होता है वह पहले अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने का प्रयास करता है और क्रम से नहीं चलता।

वह सोचता है कि यह क्रम मेरे लिए है ही नहीं, मैं तो बड़ा हो गया हूँ, समाज में प्रतिष्ठित हो गया हूँ, मेरी यह उपलब्धि है, मेरी यह डिग्री है। बड़प्पन के अहंकार में ही बुद्धिजीवी बुद्धुजीवी में बदल जाता है।

हमारी भारतीय संस्कृति का जो आधार रहा है, वह है दमन, दान और दया। ये तीनों हो जाते हैं हमारे आध्यात्मिक जीवन के प्राईमरी और सैकेण्डरी क्लास। उसके बाद जब कॉलेज में भरती होते हो तो श्रीकृष्ण एक सूत्र देते हैं– *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*– अभी तक तुम्हारी जो मान्यताएँ हैं, विश्वास हैं, उन सबको एक किनारे रखकर मुझमें संलग्न हो जाओ, मुझसे जुड़ जाओ, मुझमें एकाकार हो जाओ। सृष्टि के आरम्भ में दिया गया दमन, दान और दया का संदेश और उसके बाद श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया यह संदेश, अगर हम इन दोनों को साथ करते हैं, तो अपनी संस्कृति का क्रम स्पष्ट रूप से दिखाई देगा।

यही शिक्षा संत और महात्मा देते हैं और यही शिक्षा भारत की एक बहुत ही शक्तिशाली विचारधारा का आधार भी बनी, जिसे हम लोग कहते हैं अद्वैत वेदान्त। यही शिक्षा आश्रमों में दी जाती है। आश्रमों को चाहे तुम कुछ भी कहकर पुकारो, लेकिन उनका मूल प्रयोजन होता है दमन, दान और दया की शिक्षा, और उसके साथ-साथ *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज* की शिक्षा। सभी मान्यताओं और विचारों को अलग रखकर अपनी श्रद्धा को मूर्त रूप देना है, अपने आप को अपने आराध्य के साथ जोड़ना है।

जहाँ तक दमन, दान और दया की बात है, ये मनुष्य की तीन मूल प्रवृत्तियों को परिवर्तित करने में सहायक होते हैं। भोग वृत्ति से ऊपर उठने के लिए दमन, स्वार्थ वृत्ति से ऊपर उठने के लिए दान और तामसिक स्वभाव से ऊपर उठने के लिए दया। हर मनुष्य भोगी है। भोग मनुष्य के जीवन में छाया हुआ है। बिना भोग के आदमी रह भी नहीं सकता है आज। भोग माया का सबसे बड़ा अस्त्र है क्योंकि भोग के बल पर ही माया हर व्यक्ति को भ्रमित करती है। जब माया आपको संसार की ओर खींचती है तो भोग को ही सामने रखती है। अगर स्वादिष्ट लड्डू सामने रखा जाए तो इन्द्रियाँ लड्डू की ओर आकर्षित हो जाएँगी। अगर मधुर संगीत को सुना जाए तो इन्द्रियाँ संगीत की ओर आकर्षित हो जाएँगी। अगर कोई विश्व-सुन्दरी सामने आ जाए तो सब इन्द्रियाँ उसी ओर खींची जाएँगी। मनुष्य भोग की लालसा में आत्म-नियंत्रण को खोकर भोग की तृप्ति के लिए पागल हो जाता है। यहाँ पर दमन शब्द का महत्त्व दिखलाई देता है। दमन का मतलब होता है अपने ऊपर नियन्त्रण का होना, बेलगाम नहीं होना, अपने जीवन में संयम को धारण करना।

भोग के साथ एक दूसरी वृत्ति है जिसे कहते हैं स्वार्थ वृत्ति। स्वार्थ वृत्ति की मुख्य अभिव्यक्ति है संग्रह। आदमी को संग्रह करना अच्छा लगता है। संसार के विभिन्न विषय-वस्तुओं का तो संग्रह करता ही है, संसार के विभिन्न अनुभवों का

भी संग्रह करता है। अगर उसका बस चले तो पूरे संसार को अपनी जेब में रखने का प्रयास करेगा। यह है स्वार्थ या संग्रह वृत्ति जो मनुष्य जीवन की सीमा को संकीर्ण बना देती है। इस संग्रह वृत्ति से ऊपर उठने के लिए हमारी परम्परा और हमारे शास्त्रों में दान धर्म का उल्लेख किया गया है। एक सक्षम व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार कुछ-न-कुछ देना चाहिए। अगर दूसरे व्यक्ति के जीवन में धन का अभाव है, तो धन देना चाहिए। अगर दूसरे व्यक्ति के जीवन में वस्त्र का अभाव है, तो वस्त्र दान होना चाहिए। अगर दूसरे व्यक्ति के जीवन में अन्न का अभाव है, तो अन्न-दान करना चाहिए। अगर दूसरे व्यक्ति के जीवन में शिक्षा का अभाव है, तो शिक्षा-दान करना चाहिए। दान के एक नहीं, हजार रूप होते हैं। दान व्यक्ति को भौतिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध बनाता है। इसलिए दान का बड़ा महत्त्व है।

मनुष्य के जीवन में तमस् की कठोरता और कलुषता को दूर करने के लिए दया भाव को जागृत करना है। जब तक मनुष्य संवेदनशील नहीं होता, उसके जीवन में दया अभिव्यक्त नहीं होती है। जब तक हृदय कोमल नहीं होता, मनुष्य की भावना दया से नहीं जुड़ती। जब तक हृदय कठोर है, दया दूर है पर जब हृदय कोमल हो जाता है, तो दया उस हृदय की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है।

दमन, दान और दया—ये हमारी भारतीय संस्कृति के तीन आधार माने गए हैं, और जब कृष्ण जी आकर कहते हैं कि *सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज,* तो उसका मतलब यही होता है कि अभी तक दमन, दया और दान के दौरान अगर

तुम्हारे मन में कुछ भ्रान्तियाँ थीं तो उन सबसे अपने आप को मुक्त करके परमात्मा की शरण में आ जाओ। परमात्मा मनुष्य से अलग नहीं हैं। परमात्मा का एक रूप नहीं होता, असंख्य रूप होते हैं– *सहस्रशीर्षा: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।*

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने अनेकों बार समझाया है कि अगर तुम मानते हो कि परमात्मा तुम्हारे भीतर है तो तुम परमात्मा के रूप हो। परमात्मा तुमसे अलग नहीं है, और वह अनेक मॉडलों में आया है। कोई बूढ़ा है तो कोई जवान। अपने बगल में एक बार देख लेना कौन-सा मॉडल बैठा है। जो मॉडल आपकी बगल में बैठा है, वही परमात्मा का रूप है।

हमारे गुरुजी कहते थे कि हम लोगों के भीतर का परमात्मा जीवन के अनुभवों से अलग नहीं है, दूर नहीं है। अगर कोई व्यक्ति भूखा है तो यह मानकर चलो कि उसके भीतर बैठा हुआ परमात्मा भी भूखा है। अगर कोई व्यक्ति प्यासा है तो यह मानकर चलो कि उसके भीतर बैठा हुआ परमात्मा भी प्यासा है। अगर कोई व्यक्ति दु:खी है तो जानो कि उसके भीतर बैठा हुआ परमात्मा भी दु:खी है। अगर कोई व्यक्ति सुखी है तो जानो कि उसके भीतर बैठा हुआ परमात्मा भी सुखी है। जो आप अभी अनुभव कर रहे हो, वही चीज परमात्मा भी आपके साथ आपके जीवन में अनुभव कर रहा है।

अब प्रश्न यही है कि हम कैसे उस परमात्मा को जान सकें, आत्मसात् कर सकें? इसके लिए गुरुजी ने तरीका भी बताया है, जो वेदान्त की ही शिक्षा है। क्या तरीका? आत्मभाव, अपने आपको दूसरों में देखो। आत्मभाव के द्वारा परमात्मा को दूसरों में देखो। यही शिक्षा और संस्कार आश्रम में दिया जाता है।

आप गुरुपूर्णिमा के इस पावन अवसर में भाग लेने के लिए रिखियापीठ आश्रम में आए हो, और यहाँ आकर श्री स्वामी सत्यानन्द जी के विचारों और संकल्पों से, जिन्हें आप यहाँ पर मूर्त रूप लेते देख रहे हो, अपने आप को जोड़ने का प्रयास कीजिए। जीवन की जो दुर्दशा होती है, उससे मुक्त होने का यही एक उपाय है, और कुछ नहीं। हर व्यक्ति के जीवन की दुर्दशा होती है, चाहे वह खुद करता है, चाहे परिस्थितियाँ करती हैं। दुर्दशा से कोई मुक्त नहीं है, पर हर व्यक्ति मुक्त होना चाहता है। हर व्यक्ति अशान्ति और क्लेश से दूर होना चाहता है।

अपने जीवन की दुर्दशा को दूर करने के लिए और अपने भीतर गुरु-तत्त्व के प्रकाश को प्राप्त करने के लिए दम, दान, दया, समर्पण और आत्मभाव–इन पाँच चीजों को अपने जीवन में अपनाने का प्रयत्न अवश्य करना है। दम साधना है, दान अभिव्यक्ति है, दया अन्तरात्मा की एक स्थिति है, समर्पण जीवन का मर्म है और आत्मभाव जीवन की उपलब्धि है। इन पाँच चीजों को हम अवश्य हृदयंगम करें क्योंकि यही हमारी परम्परा की, हमारे सन्तों और सिद्धों की शिक्षा रही है।

–1 जुलाई 2012, गुरु पूर्णिमा महोत्सव, रिखियापीठ

गुरु की खोज

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

गुरु की खोज प्रारम्भ करने के पूर्व आपको अच्छी तरह यह समझ लेना चाहिए कि आप किन उद्देश्यों से इस हेतु अभिप्रेरित हैं। आप उनसे अपनी किन आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा रखते हैं? क्या आप अन्तरात्मा की जागृति की भावना से प्रेरित हैं? क्या आप अपने वर्तमान जीवन में मात्र एक ज्ञानी व्यक्ति के ज्ञान और अनुभव को शामिल करना चाहते हैं? क्या आप शारीरिक या मानसिक रोग, बेरोजगारी अथवा आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न गहरी निराशाओं से मुक्ति पाने हेतु गुरु की खोज कर रहे हैं?

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि आप किस प्रयोजन से गुरु की खोज करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में पर्याप्त आत्मचिन्तन होना चाहिये। आप यह बात याद रखें कि जैसी आपकी आवश्यकता होगी वैसे ही गुरु आपको मिलेंगे। यदि आपकी गुरु की आवश्यकता सच्ची होगी तो आपकी खोज के परिणामस्वरूप सही व्यक्ति अवश्य मिल जाएँगे।

उदाहरण के लिये, आप आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम लक्ष्य के अनुभव की इच्छा कर सकते हैं तथा ऐसा सोच सकते हैं कि आप इस हेतु तैयार हैं। किन्तु वास्तव में आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से आप निम्नतम स्तर पर स्थित हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में आप उच्चतम स्तर से ही यात्रा कैसे प्रारम्भ कर सकते हैं? मान लीजिये कि किसी दिन जोश में आकर आप शल्यचिकित्सक बनने का निश्चय कर बैठते हैं, ऐसी स्थिति में क्या यह व्यावहारिक होगा कि आप एक दक्ष विशेषज्ञ के पास जाकर उनसे निवेदन करें कि वे तत्क्षण आपको शल्यचिकित्सा का प्रशिक्षण देने लगें। वे कभी ऐसा नहीं करेंगे। वे आपको सबसे पहले मौलिक शरीर-रचना विज्ञान सीखने की सलाह देंगे।

आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये ऐसी घटना एक सामान्य बात है। कभी-कभी वे अति उत्साहित हो जाते हैं तथा गुरु खोजने हेतु शीघ्रता से ऋषिकेश या अन्य स्थानों की ओर प्रयाण का निर्णय ले लेते हैं। परिणामस्वरूप अनेक दुर्घटनाओं को भोगकर तथा बुरी तरह निराश होकर वापस लौटते हैं। अपनी आध्यात्मिक विकास यात्रा में गलतियों, दुर्घटनाओं एवं पश्चात्तापों से बचने के लिये आपको धीरे-धीरे क्रमबद्ध रूप से अपनी दिशा तथा आवश्यकताओं का निर्धारण करना होगा।

हो सकता है कि कुछ अर्से से आप दु:खों एवं कठिनाइयों से गुजर रहे हों। जब हम कठिन परिस्थितियों के प्रभाव में होते हैं तो प्राय: हमारे अन्दर कुछ जग उठता

है और हम जीवन को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। संसार के प्रति हम एक निःस्पृह, तटस्थ भाव का अनुभव करते हैं। हमें प्रत्येक वस्तु में क्षणभंगुरता का अनुभव होने लगता है। इसलिए हम उन सभी वस्तुओं के प्रति उदासीन रहने लगते हैं जिनके लिये कभी हममें तीव्र ललक हुआ करती थी। ऐसे विचारों के प्रभाव में आकर हम गुरु खोज सकते हैं और संन्यास भी ले सकते हैं। किन्तु अपने क्षणिक मानसिक सदमे से उबरते ही हम पाते हैं कि हमारी इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ एवं वासनाएँ त्वरित गति से वापस आ रही हैं। तब हम अनुभव करते हैं कि यदि हम अपनी आवश्यकताओं का ठीक से विश्लेषण करते तो गुरु की खोज उपर्युक्त लक्ष्यों से निर्धारित होती, अन्य से नहीं।

भौतिक पदार्थों की क्षणभंगुरता से सम्बन्धित विचार वैसे साधकों के मन में भी उठते हैं जो वास्तव में अपनी इच्छाओं का त्याग कर गुरु के निकट रहना चाहते हैं। परन्तु ये विचार किसी विशेष परिस्थिति के परिणाम नहीं होते, बल्कि ये तो जीवन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति उनकी गहन समझदारी से उत्पन्न होते हैं। एक बार निर्णय ले लेने के बाद कठिनाइयों का सामना होने पर पीछे मुड़ने या भटकने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

इसलिए प्रारम्भ में ही आप अच्छी तरह समझ लें कि गुरु में आप क्या खोज रहे हैं। इस बात को समझने के लिए पूर्ण सावधानी से काम लेना आवश्यक है। गुरु के निर्धारण में आपके प्रयोजन तथा सजगता के स्तर की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। प्राथमिक पाठशाला का विद्यार्थी किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर से सीखने की आशा कदापि नहीं कर सकता। उसे एक ऐसा शिक्षक प्राप्त करना होगा जो उसकी अपनी सजगता के स्तर से सम्बन्ध स्थापित कर सके। एक आध्यात्मिक साधक के लिए भी यही बात लागू होती है।

सत्संग और साधना

गुरु की खोज करने वाले साधक के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह स्वयं को शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से तैयार करे। इस हेतु सर्वोत्तम उपाय यह है कि वह आध्यात्मिक विषयों पर होने वाले सत्संगों, व्याख्यानों एवं वार्तालापों में अधिकाधिक भाग ले। वह ऐसे ज्ञानी पुरुषों की खोज में अवश्य रहे जो शास्त्रों द्वारा उद्घाटित जीवन के रहस्यों तथा मौलिक सत्यों की व्याख्या कर सकें और उसे आत्मनिरीक्षण हेतु प्रेरित कर सकें।

ज्ञानी जनों से सत्संग के इस अभ्यास को आप अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना सकते हैं। जब भी अवसर मिले, आप ऐसे लोगों के सान्निध्य के लाभ से न चूकें। आपके आध्यात्मिक जीवन के आरम्भ में यह सरलतम एवं सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जब भी हम सकारात्मकता के

सम्पर्क में आते हैं तो हम उसी दिशा में अपना विकास करने हेतु प्रेरित होते हैं।

सत्संग में शामिल होने के साथ-साथ आपको कुछ व्यक्तिगत साधना या यौगिक अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। कुछ समय के बाद आप पायेंगे कि आपकी समझ अधिक स्पष्ट एवं आपके निर्णय अधिक सटीक हैं। अपनी सीमाओं, सामर्थ्यों एवं कमजोरियों के बारे में आपकी जानकारी बेहतर होगी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि आपके सामने आपका लक्ष्य या उद्देश्य स्पष्ट होने लगेगा। इसमें कुछ समय लग सकता है। आप प्रतीक्षा करें। इस सन्दर्भ में आपकी सफलता अपने अभ्यास के प्रति लगन तथा नियमितता पर निर्भर करेगी। आपकी समझदारी और अन्तर्दृष्टि धीरे-धीरे सशक्त होगी और अन्त में, समय आने पर, आप अपने गुरु को पहचानने में समर्थ हो जायेंगे।

एक बात पर जोर देने की आवश्यकता है। सीमित सजगता के साथ गुरु का चयन नहीं किया जाना चाहिये। जब तक आपकी सजगता आशंकाओं, दु:खों, चिन्ताओं तथा सन्देहों से मुक्त न हो जाए तब तक गुरु का वरण करने में विलम्ब ही श्रेयस्कर है। इनके प्रभाव में निर्णय लेने में निश्चित रूप से गलती होगी। अनेक बार आप ऐसे लोगों से मिलते हैं जिन्हें सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं। वे आपको क्षणिक अनुभव प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। ऐसी स्थिति में आप अपनी भावनाओं के वशीभूत होकर भ्रमित हो जाते हैं। ऐसे लोगों के साथ आप गहरा लगाव भी अनुभव कर सकते हैं, लेकिन वे निश्चित रूप से वैसे गुरु नहीं हैं, जिनकी आप खोज कर रहे हैं।

आप ऐसे लोगों को उनके असली रूप में देखने का प्रयास अवश्य कीजिए। अपना वास्तविक गुरु पाने के पूर्व आपको ऐसे अनेक अनुभवों से गुजरना पड़ सकता है। आपको ऐसे अनुभवों के सकारात्मक प्रभावों को ग्रहण करना चाहिए। लेकिन आप वास्तविक रूप से तब तक प्रतिबद्ध न हों जब तक कि आप पूर्णत: आश्वस्त न हो जाएँ। व्यक्ति इस सम्बन्ध में तभी नि:संशय और तैयार हो सकता है जब उसकी समझ शुद्ध और बहुत हद तक स्पष्ट हो जाए।

गुरु प्राप्त करने हेतु उन्मत्त होने या स्नायविक विकारों से ग्रस्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप सत्संग और साधना द्वारा अपने को तैयार कीजिए। दक्ष योग शिक्षक आपको उपयुक्त यौगिक क्रियाओं के बारे में सलाह दे सकते हैं। इसी प्रकार ज्ञानी लोगों के सत्संग में भाग लेने के भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। ज्योंही

आपकी सजगता बढ़ेगी और समझदारी गहरी होगी, आपको अपना मार्ग और गुरु अनायास ही मिल जाएगा।

गुरुओं की श्रेणियाँ

जिस प्रकार एक शिष्य के लिये विकास के अनेक स्तर होते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न गुरु भी विकास के विभिन्न स्तरों पर होते हैं। ज्ञानी गुरु धर्मशास्त्रों में निष्णात होते हैं। योगी गुरु सभी प्रकार के योगाभ्यासों में दक्ष होते हैं तथा पूर्ण कुशलता से उनकी शिक्षा दे सकते हैं। तान्त्रिक गुरु उन तरीकों में निपुण होते हैं जिससे वे आर्थिक या अन्य कठिनाइयों का उन्मूलन कर सकते हैं।

यदि आप उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं और इस हेतु सर्वस्व त्यागने के लिये तैयार हैं, तो आप निश्चित रूप से एक ब्रह्मनिष्ठ गुरु की खोज करें। ब्रह्मनिष्ठ गुरु सदैव ब्रह्म या परम सत्य में लीन रहते हैं। ऐसे गुरु दुर्लभ होते हैं। यदि आपको ऐसे गुरु मिल जाएँ और आप उनके गुणों को पहचानने में सफल हो जाएँ तो आपको समझना चाहिये कि आप बहुत भाग्यवान् हैं। हो सकता है कि आप ऐसे महापुरुषों से कई बार मिल चुके हों पर अपनी सन्देह और दम्भ भरी बुद्धि के कारण आप उन्हें न पहचान सके हों। वे अपनी पीठ पर कोई विज्ञापन लगाकर नहीं चलते कि मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ, मेरा अनुसरण करो। सच्चे ब्रह्मनिष्ठ गुरु सभी प्रकार के आडम्बरों से बचते हुए सरलतम जीवन बिताते हैं।

यहाँ एक बात को स्पष्ट करना आवश्यक है। गुरु मूलत: दो प्रकार के होते हैं—एक को परम तत्त्व का ज्ञान होता है और दूसरे को उसका ज्ञान और अनुभूति, दोनों होते हैं। आपको कैसे गुरु की आवश्यकता है इसका निर्णय आपको स्वयं करना है। यदि आपको सिर्फ ज्ञान चाहिये तो आप एक ज्ञानी गुरु की खोज करें। किन्तु यदि आप अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको एक ब्रह्मनिष्ठ या तान्त्रिक गुरु की शरण में जाना होगा।

गुरु और शिष्य का पारस्परिक सम्बन्ध

प्राय: पाया जाता है कि अपने विकास के स्तर या अपनी सही आवश्यकताओं का निर्धारण करना शिष्य की क्षमता के बाहर की बात होती है। ऐसा होने पर भी उसके मन में गुरु प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसी स्थिति में सर्वोत्तम उपाय यह है कि वह एक ज्ञान-सम्पन्न गुरु के पास जाए। वे आपके विकास के स्तर को समझने तथा आपके आवश्यकतानुसार आपका मार्गदर्शन करने में सक्षम होंगे। यदि आप उनमें विश्वास करते हैं तो सदैव याद रखें कि उनका आदेश-निर्देश आपके लिये अन्तिम सत्य है। वे आपको संन्यास लेकर आश्रम में रहने की आज्ञा दे सकते हैं या साधना से सम्बन्धित निर्देश देकर घर वापस भेज सकते हैं। आश्रम में आपको

बहुत उत्तरदायित्त्वपूर्ण कार्य दिया जा सकता है या सिर्फ यह कहा जा सकता है कि दिन-रात सब्जी काटिये। इनमें से किसी भी कार्य से शिष्य के मार्ग में न तो अवरोध होना चाहिये और न उसके अहंकार में ही वृद्धि होनी चाहिये। केवल गुरु जानते हैं कि उसे कोई विशेष कार्य क्यों दिया गया है। कुछ दिनों के बाद शिष्य को पता चलेगा कि गुरु उसकी आंतरिक प्रकृति को, अन्य किसी व्यक्ति की तुलना में बेहतर ढंग से समझ सके हैं।

प्राय: अपने पूर्व जीवन में शिष्य एक गुरु के साथ रह चुका होता है, किन्तु वर्तमान जीवन में उसे गुरु से किसी सम्पर्क के बिना कुछ अनुभवों से गुजरना होता है। इन अनुभवों से गुजरने के बाद गुरु के प्रति उसकी उत्कण्ठा बढ़ने लगती है। यह स्थिति कुछ हद तक भूख से रोते हुए बच्चे के समान है। माँ उसका रोना सुनती है, किन्तु वह जानती है कि उसे दूध पिलाने का यह उचित समय नहीं है। इसी प्रकार आपके जीवन में गुरु के अभ्युदय का भी एक सही समय होता है। वह मुहूर्त्त आते ही आपको गुरु मिल जायेंगे।

ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब गुरु शिष्य की स्वप्नावस्था या ध्यानावस्था में प्रकट होते हैं। तब शिष्य उस व्यक्ति की खोज करता है जिसे उसने इस अवस्था में देखा है। महर्षि अरविन्द की प्रमुख शिष्या 'माँ' को गुरु का दर्शन स्वप्न में ही हुआ। उन्होंने देखा कि महर्षि उन्हें अपनी ओर आने के लिये इशारा कर रहे हैं। बाद में वे अरविन्द आन्दोलन का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग बन गईं।

कभी-कभी गुरु को भी किसी विशेष शिष्य को खोजने या प्राप्त करने का आदेश मिलता है, किन्तु ऐसा मुख्यत: विकसित चेतना वाले शिष्यों के सम्बन्ध में ही होता है जिन्हें किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति करनी होती है। रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द की कहानी तो हम सभी जानते ही हैं। रामकृष्ण अपने शिष्य की खोज में थे। जब वे कलकत्ता के एक कुलीन युवक, नरेन्द्र से मिले तो तत्क्षण समझ गए कि वे ही उनके महान् लक्ष्यों को पूरा करेंगे। नरेन्द्र ही आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द हुए। उन दिनों नरेन्द्र पूर्णत: बुद्धिवादी थे। वे रामकृष्ण की अनेक बातों तथा क्रिया-कलापों से सहमत नहीं होते थे। उनके विचार तथा प्रतिक्रियाएँ उनकी बुद्धिवादिता से प्रभावित थीं। इसके बावजूद उनका हृदय सम्मोहित होकर रामकृष्ण की तरफ खिंचा चला जाता था। युवक नरेन्द्र इस रहस्य को नहीं समझ पाते थे, इसलिए उन्हें अत्यधिक मानसिक द्वन्द्व से गुजरना पड़ता था। धीरे-धीरे परिस्थितियाँ ऐसा रूप लेती गईं कि अन्त में नरेन्द्र गुरु के आगे पूरी तरह समर्पित हो गए। आगे की कहानी तो एक इतिहास बन गई।

हमें स्वीकार करना होगा कि ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का निर्धारण उच्च शक्तियों द्वारा होता है। उचित समय आने पर ये घटनाएँ अपने आप एक निश्चित स्वरूप लेने लगती हैं। आप स्वत: अपने गुरु के पास पहुँच जाते हैं। आप जैसे

ही उन्हें देखते हैं, आपका हृदय, आपकी आत्मा उनसे जा मिलती है। उस समय आपके सारे संदेह निर्मूल हो जाते हैं। दो हृदयों के मिल जाने के उपरान्त सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। जब हम बुद्धि के क्षेत्र में रहते हैं तभी प्रश्नों, सन्देहों एवं विभिन्न प्रकार की कुण्ठाओं से परेशान होते हैं।

मैंने भी अपने जीवन में गुरु की खोज की है। मैं भी ऐसे प्रश्न किया करती थी। मैं सोचा करती थी कि क्या वे मुझे मिलेंगे, क्या मैं उन्हें पहचान पाऊँगी। चूँकि मेरी खोज बुद्धि पर आधारित थी, इसलिए मैं भी ऐसे प्रश्नों से परेशान रहती थी। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि ऐसे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है—प्रश्न करना ही बन्द कर दीजिए। अपने अन्दर झाँकिए, अपनी साधना को तीव्र कीजिए। लगनशील साधक बनिए। ऐसा होने पर संसार की कोई भी शक्ति आपको आपके गुरु से अलग नहीं रख सकेगी।

अन्त में हम कह सकते हैं कि गुरु प्राप्त करने की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती। यह कोई ऐसी चीज नहीं जिसे हम बाजार में खरीद सकें। गुरु की कोई सटीक परिभाषा नहीं दी जा सकती। वे हमारे सीमित, परम्परागत शब्दों से परे होते हैं। हमें तो उनकी आत्मा से संचार स्थापित करना है। ऐसा संचार शब्दों, इन्द्रियों या बुद्धि पर आधारित नहीं होता। इसलिए हम मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वयं को तैयार करें और कुछ समय बाद, जब गुरु मिलेंगे, हम उन्हें जरूर पहचान लेंगे।

—'गुरु-शिष्य सम्बन्ध' से उद्धृत

दूध में छिपा मक्खन

एक शहरी लड़की पहली बार अपने गाँव गई। रात को सोने से पहले उसकी दादी ने दूध से भरे बर्तन में थोड़ी छाछ मिला दी। लड़की ने दादी से पूछा, 'दादी माँ, आपने दूध में यह छाछ क्यों मिला दी? इससे दूध खराब नहीं होगा क्या?' दादी बोली, 'बेटी, मक्खन निकालने के लिए दूध को इसी तरह से तैयार किया जाता है।' 'पर दादी माँ, इस दूध में मक्खन है कहाँ?' 'मक्खन तो दूध की हरेक बूँद में है बेटी, पर तुम उसे अभी नहीं देख पाओगी। मैं तुम्हें सुबह दिखाऊँगी।'

सुबह लड़की देखती है कि जो चीज़ पहले तरल थी वह रातभर में ठोस हो गई है। फिर जब दादी उस ठोस दही को ज़ोर से मथने लगती है तो दही की सतह पर मक्खन तैरने लगता है। मक्खन को इकट्ठा करके अपनी चौंकी हुई पोती को दिखाकर वह कहती है, 'बेटी, छाछ से दूध जमकर दही बन जाता है, फिर उसे मथना पड़ता है। इस विधि से दूध में व्याप्त मक्खन को निकाल पाते हैं। पहले तो यह छिपा था, तुम इसे देख नहीं पाई, पर अब कहाँ से आया? उसी दूध से। मतलब वह हर समय मौजूद था, पर स्वयं को प्रकट करने के लिए मथने की प्रतीक्षा करता रहा।' शहर लौटकर वह लड़की भी यही प्रक्रिया अपनाकर अपने लिए मक्खन निकालने में सफल हुई।

इसी तरह से एक संसारी व्यक्ति किसी महात्मा के पास जाकर पूछता है, 'महाराज! आपने यह संसार छोड़कर अपने जीवन में वैराग्य और त्याग का भाव क्यों घोल लिया है? आप जीवन को स्वाभाविक रूप से क्यों नहीं चलने देते?' महात्मा कहते हैं, 'भाई, मैं यह सब भगवान को पाने के लिए करता हूँ।' 'भगवान कहाँ हैं?' 'वे तो सर्वव्यापी हैं।' लेकिन संसारी व्यक्ति इस बात को समझ नहीं पाता।

तब महात्मा उसे समझाते हैं कि अपने चंचल अंत:करण को कैसे स्थिर और सुदृढ़ बनाया जाए। फिर धारणा और ध्यान की मथनी से इस ठोस अंत:करण का मंथन करना चाहिए। तब जाकर ईश्वर का साक्षात्कार होगा। वे हैं तो सर्वव्यापी, सृष्टि के कण-कण में मौजूद, लेकिन आम आदमी न तो उन्हें देख सकता है, न ही पा सकता है। सिर्फ साधना रूपी मंथन-प्रक्रिया से वे प्राप्त होते हैं।

जैसे उस लड़की को दूध में व्याप्त मक्खन और उसे निकालने की मंथन-प्रक्रिया को जानने के लिए दादी की आवश्यकता पड़ी, वैसे ही एक साधक को ईश्वर के अस्तित्व, उनकी सर्वव्यापकता और उन्हें प्राप्त करने की साधना को जानने के लिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। अगर साधक गुरु के आदेशों का अक्षरश: पालन करता है, तो वह भी ईश्वर को प्राप्त करने में सफल होता है।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

योग का वास्तविक प्रयोजन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जीवन में दो शक्तियाँ हैं, एक है प्राण और दूसरी है मन। प्राण पिंगला है, मन इड़ा है। इन्हीं के सायुज्य को योग कहते हैं। आसन-प्राणायाम सम्पूर्ण योग नहीं हैं, योग के मात्र एक विषय हैं, अंग हैं। जैसे शिक्षा जगत् में भूगोल, गणित या राजनीति विभिन्न विषय हैं, उसी तरह योग के क्षेत्र में भी अलग-अलग विभाग और विषय हैं, जैसे, हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, लययोग, क्रियायोग, इत्यादि। लेकिन योग की वास्तविक परिणति तब होती है जब प्राणिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ आपस में मिलती हैं, एक मिनट के लिए ही सही। जैसे एक कछुआ अपने सभी अंग समेट लेता है उसी तरह अपने मन, इन्द्रियों और सभी वृत्तियों को एक मिनट के लिए समेटकर शून्य बन जाओ, चाहे सबेरे या शाम को। तुम आदमी हो या औरत, हिन्दू हो या मुसलमान, अच्छे हो या बुरे, स्वस्थ हो या बीमार, एक मिनट के लिए सब कुछ भूल जाओ।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

जो अपने मन को थोड़ी देर के लिए अन्दर में समेट लेता है, समझ लो कि वह स्थिर बुद्धि वाला है। नहीं तो तुम्हारी बुद्धि स्थिर नहीं है, तुम चंचल हो। स्थिर मन पाने के लिए थोड़ी देर के लिए अपनी इन्द्रियों, विचारों और पूरी चेतना को समेटना पड़ता है। चाहे प्राणायाम से करो, या धारणा से या क्रियाओं से, इसके हजारों उपाय हैं।

तुम मंदिर या गिरजाघर जाकर पूजा करते हो, 'जय जगदीश हरे' गाते हो, ये सब कर्मकाण्ड हैं। इनको करके भी तुम वहीं के वहीं रहते हो। सीधी बात बोल रहा हूँ। अगर तुम्हारा धर्म कहता है तो यह सब करते रहो। मैं तुम्हारे धर्म की आलोचना नहीं कर रहा हूँ, लेकिन असली चीज यह है कि इस प्रपंची संसार से अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने भीतर समेटना है, थोड़ी देर के लिए ही सही। और यही वास्तविक योग है। मैं जब योग की बात करता हूँ तो मेरा अभिप्राय यही है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः– योग की परिभाषा एकदम स्पष्ट है। चित्त की वृत्तियों के रोकने को योग कहा जाता है। आसन या प्राणायाम योग नहीं, योगांग हैं। जैसे वेद के अंगों को वेदांग कहते हैं, जैसे दाल-सब्जी भोजन नहीं, भोजन के अंग हैं, वैसे ही आसन-प्राणायाम योग के अंग हैं। और इन्हें करना पड़ता है। क्यों? तुम्हारे शरीर में जितनी समस्याएँ हैं, तुम्हारे हॉरमोन्स में, तंत्रिका-तंत्र में जितना

असंतुलन है, उसे योगासन से ठीक किया जा सकता है। *स्थिरसुखमासनम्*–स्थिरं और सुखं–योगासन की ये दो मुख्य परिभाषाएँ हैं। आसनों से तुम्हारा शरीर द्वन्द्वों के आघातों से मुक्त होता है। द्वन्द्व क्या है? गर्मी और सर्दी, सुख और दुःख, जन्म और मरण, ये सभी द्वन्द्व हैं। जीवन में सब जगह द्वन्द्व हैं और इन्हीं की वजह से तुम्हारे शरीर के हॉरमोन्स, आंतरिक तंत्रों और अंगों में गड़बड़ी पैदा होती है। आसनों से उसे ठीक करो–*ततो द्वन्द्वानभिघातः*–यही आसन की परिभाषा है और इसकी सीमा भी। यह मत कहो कि आसन से तुम भगवान को पा लोगे। इसी तरह प्राणायाम की अपनी अलग भूमिका है। लेकिन अंतिम चीज यह है कि तुम एक-दो मिनट के लिए ही सही, पर प्रतिदिन अपने इन्द्रिय अनुभवों को समेट सको, अपने जीवन के अंतिम दिन तक। तब तुम्हें शायद वह चीज मिलेगी जिसकी तुम तलाश कर रहे हो।

चेतना के विभिन्न आयाम

योग को केवल आसन और प्राणायाम तक सीमित मत करना। यह शरीर केवल हाड़-मांस नहीं है। मन भी है, इन्द्रियाँ भी हैं, चेतना भी है, आत्मा भी है। हमारे अस्तित्व के विभिन्न आयाम हैं। हमारा न केवल भौतिक शरीर है, बल्कि मानसिक, प्राणिक, आध्यात्मिक और दिव्य शरीर भी हैं। हमारे इस शरीर में सात क्षेत्र हैं,

जिन्हें हम गायत्री मंत्र में बोलते हैं, ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्। ये गायत्री मंत्र की सप्त व्याहृतियाँ हैं, जो हमारे शरीर के अन्दर सात अस्तित्वों के नाम हैं। एक अस्तित्व तो यह दिखता है आपको, जिसे शरीर कहते हैं। यह भूलोक है। भूलोक का मतलब होता है पदार्थ की दुनिया। फिर भुवर्लोक है, स्वप्नों की दुनिया। स्वप्न क्या है, स्वप्न के समय तुम कहाँ रहते हो? निद्रा क्या है, उस समय तुम कहाँ रहते हो? ये भी तो चेतना की अवस्थाएँ हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक, अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, इन सबका तो तुम्हें रोज अनुभव होता है। इनके अलावा चार लोक और हैं—महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक और सत्यलोक।

लोक शब्द का मतलब क्या होता है? दिखाई देना। लोक का मतलब दुनिया नहीं होता है, ऐसा तो हम लोग आम बोलचाल में समझते हैं। लोक का शब्दार्थ होता है दिखाई देना, आलोकित होना। कोई चीज जो तुम्हारे सामने चमकती है, वह लोक है। किसी अनुभव की विषय-वस्तु लोक है। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में क्या दिखाई देता है, यह तो तुमको मालूम है। महर्लोक या जनोलोक में क्या आलोकित होता है? तपोलोक या सत्यलोक में क्या दिखाई देता है? दिखता तो कुछ जरूर है, लेकिन उसे कैसे बतलाएँ, यह तो वैसी ही चीज हुई जैसे गूँगे का गुड़!

आध्यात्मिक ज्ञान

जीवन का आधार अध्यात्म होना चाहिए। बच्चों को सबसे पहले इसी का संस्कार दिया जाना चाहिए। अध्यात्म वह विद्या है जिसमें तुम्हें अचिन्त्य के बारे में सोचना सिखाया जाता है। ईश्वर अचिन्त्य है न? अध्यात्म अचिन्त्य का चिन्तन है, अप्रमेय का ज्ञान है। बच्चों को आध्यात्मिक जीवन का परिचय अवश्य मिलना चाहिए, विशेषकर भारत में। भारत आई.टी., इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी का देश है। यह कम्प्यूटर वाली इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी नहीं, उस अचिन्त्य तत्त्व का इन्फॉर्मेशन। भारत ने हजारों-लाखों सालों से सारे संसार को उस तत्त्व का ज्ञान दिया है जिसे किसी ने देखा तक नहीं। हम लोगों को आई.टी. में महारत हासिल है। यह शरीर एक ऐसी मशीन, एक ऐसा कम्प्यूटर है जिसके अन्दर समस्त ज्ञान, सारी जानकारी है।

इस घट भीतर सात समन्दर
कोई मीठा कोई खारा
इस घट भीतर नौ लख मोती
कोई पन्ना कोई हीरा
अवधु अंधाधुंध अंधियारा
इस घट भीतर बैठा सर्जनहारा ।

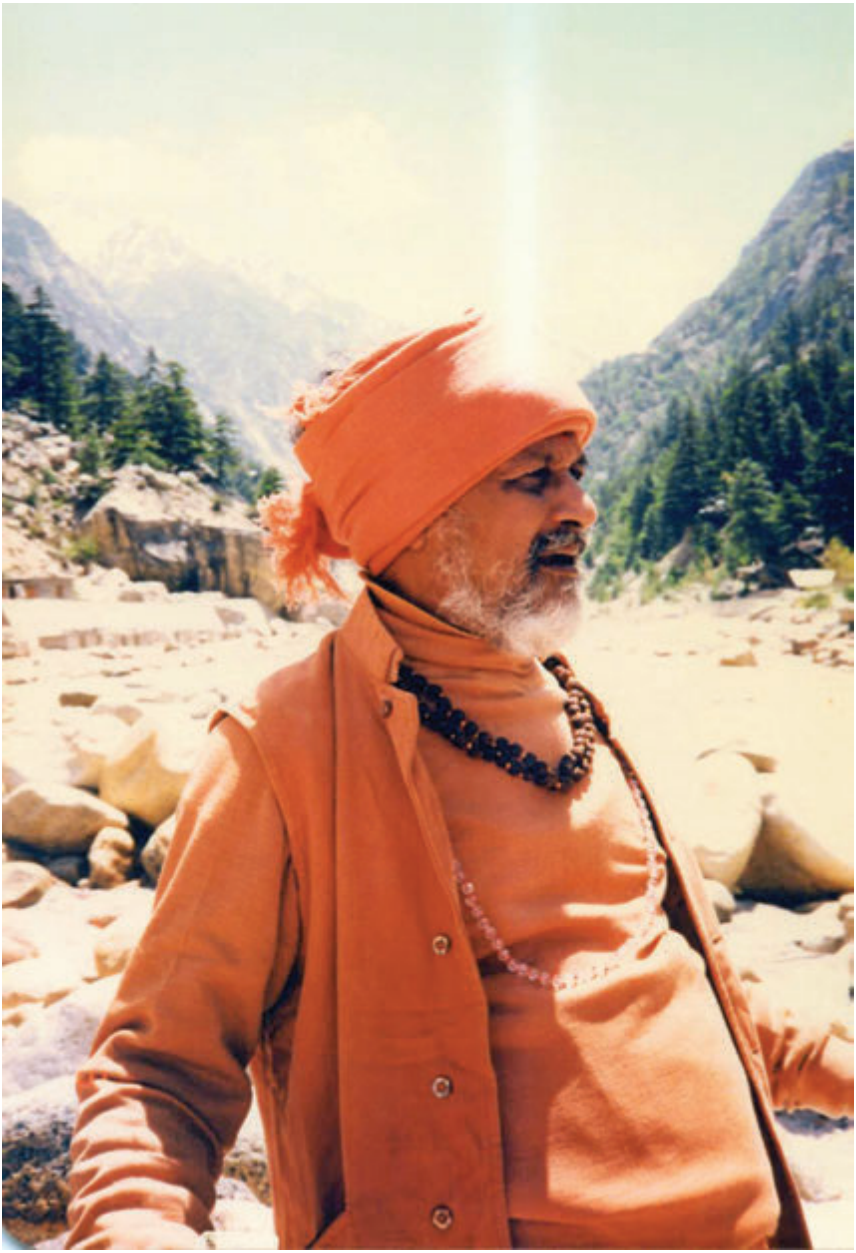

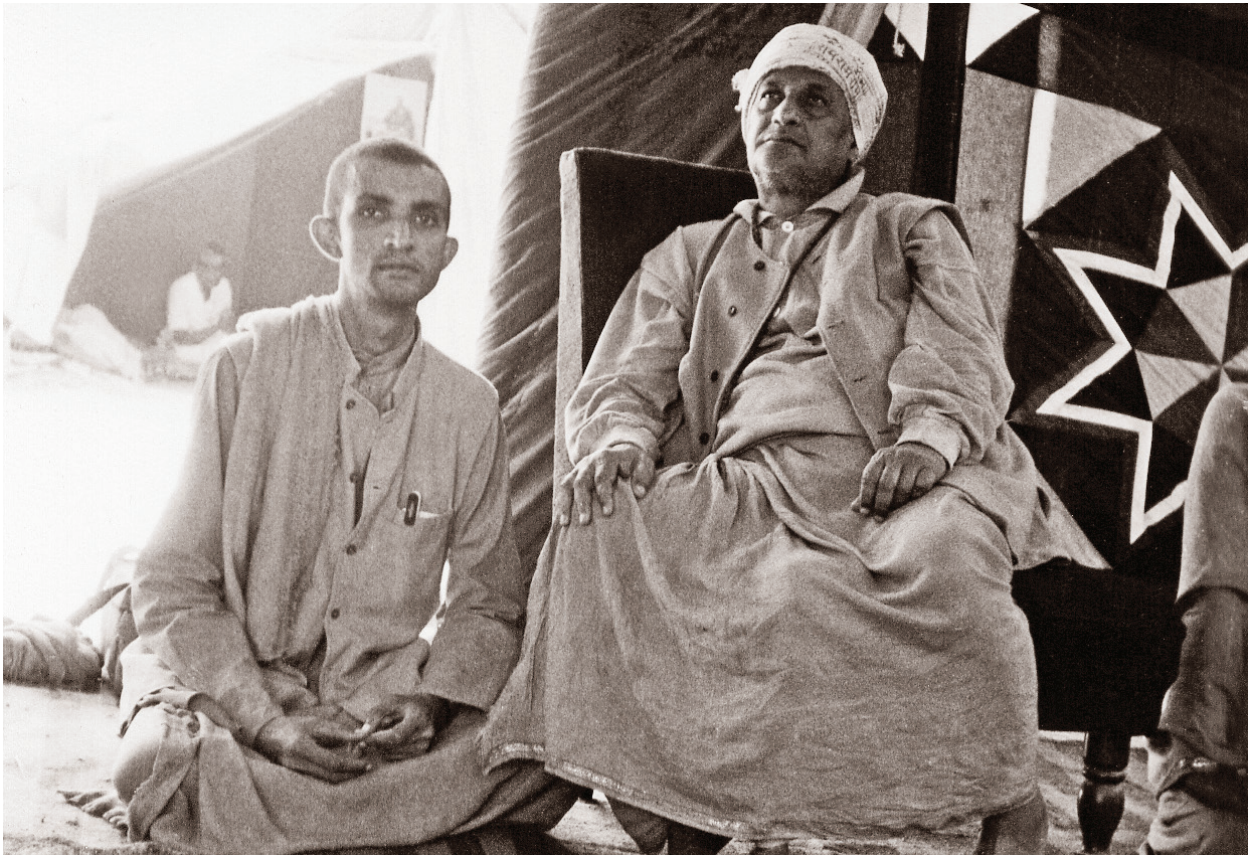

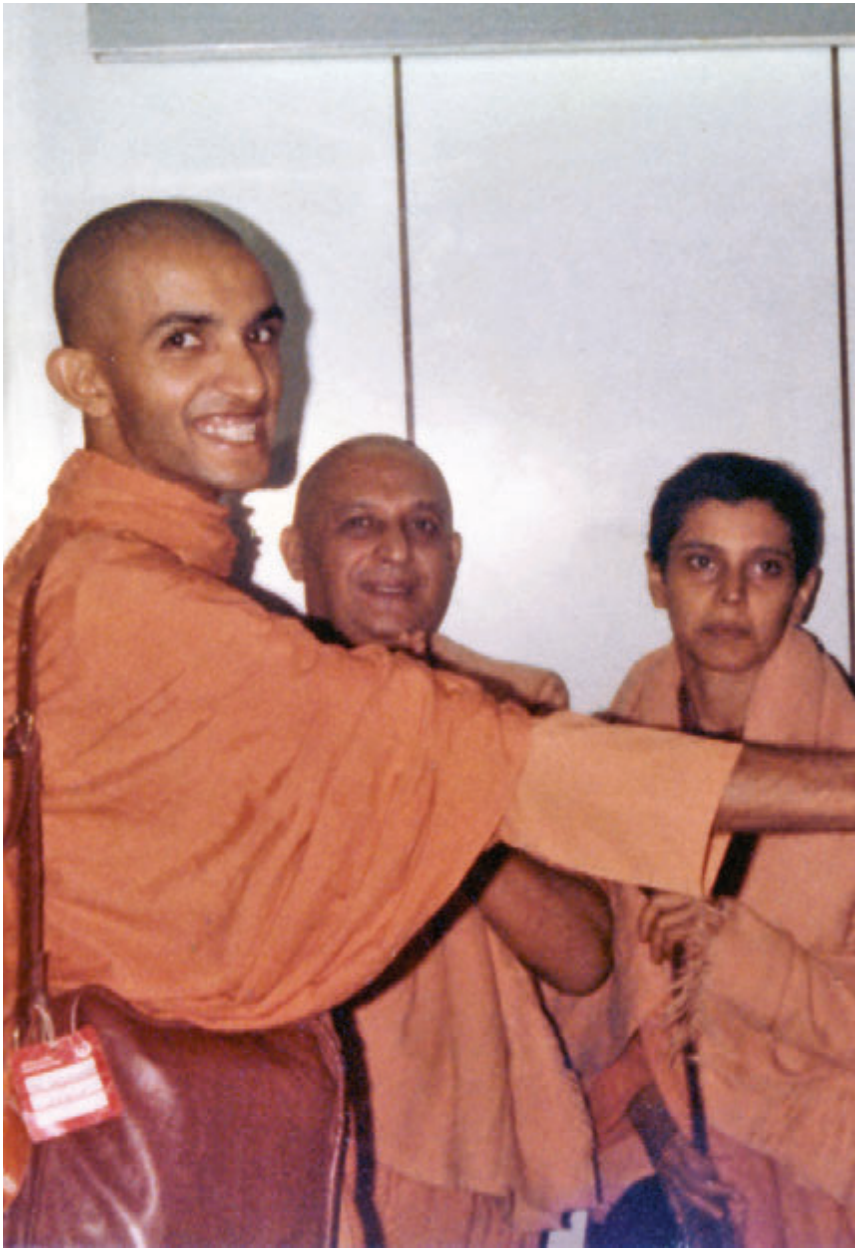

सारे ब्रह्माण्ड का स्रष्टा तुम्हारे भीतर है। यही वह ज्ञान है, जिसे भारत ने वेदों के माध्यम से हजारों-लाखों साल पहले संसार को दिया। और यही वह इन्फॉर्मेशन टेक्नॉलोजी है जिसके बारे में भावी संसार सोचेगा।

परमात्मा कौन है? वह कहाँ है? वह है भी यह नहीं? अगर वह है तो वह जानता है या नहीं कि वह है? भारत के सबसे पुराने ग्रंथ ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में ऋषि यही प्रश्न करते हैं। उस परमात्मा को किसी ने नहीं देखा, ऋषि-मुनियों को सिर्फ झलक मिली है। और उन्होंने दुनिया को बतलाया। परमात्मा की यह जो विद्या है, इसे पहले बच्चों को सिखाओ। बच्चों को बहुत फायदा होगा, नहीं तो सब भटकने वाले हैं।

विषाद और योग

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अठारह अध्यायों में अर्जुन को अठारह योग सिखाए। अर्जुन को भगवान ने योग क्यों सिखाया? अर्जुन बीमार था क्या? हाँ, अर्जुन बीमार पड़ गया था। वैसे अर्जुन बहुत बहादुर था, अपने जमाने का श्रेष्ठ धनुर्धर था वह। द्रौपदी को उसने स्वयंवर में जीता था। पर लड़ाई के मैदान में जब आया तो बीमार पड़ गया, उसने भगवान श्रीकृष्ण से कहा–

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥1.29॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः॥1.30॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।

'हे भगवान! मेरे रोम-रोम खड़े हो रहे हैं, मेरे हाथ से धनुष खिसक रहा है, मेरी हथेली में पसीना आ रहा है, मेरी चमड़ी जल रही है, और मेरे को सब उल्टा-पुल्टा मालूम पड़ रहा है। मैं खड़ा नहीं हो पा रहा हूँ, मेरा दिमाग घूम रहा है।' जैसे आप लोग कहते हैं, 'मैं कल से ऑफिस जाने वाला नहीं हूँ' या 'मेरे से यह काम नहीं हो सकता' या 'मैं स्कूल नहीं जाऊँगा', वैसी ही बात कह अर्जुन धनुष रखकर किनारे बैठ गया।

श्रीकृष्ण ने सोचा कि इसके लिए तो कोई मामूली दवाई काम करने वाली नहीं। तब उन्होंने उसको सांख्ययोग, कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग आदि का उपदेश दिया। उन्होंने सोचा कि अठारह दवाइयों में कम-से-कम एक तो काम करेगी। और वाकई काम कर गई। अठारहवें अध्याय में अर्जुन कहता है, 'हाँ भगवान, आप जो कह रहे हैं सब समझ में आ गया। *करिष्ये वचनं तव*–जैसा आप कहेंगे, वैसा मैं करूँगा।'

अर्जुन की बीमारी को विषाद कहते हैं। विषाद की वजह से हृदय, पाचन तंत्र, पूरे शरीर के क्रिया-कलापों पर असर पड़ता है। पर यह विषाद है क्या? जैसे बिजली का कभी-कभी वोल्टेज गिर जाता है, वैसे ही आदमी के अन्दर विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा का स्तर जब गिरता है तब विषाद होता है। और जब वह बिजली बहुत ज्यादा हो जाती है तब आह्लाद होता है। कई लोगों को खुशी के मारे हृदयाघात हो जाता है न! विषाद और आह्लाद, दोनों अवस्थाओं को नियंत्रण में लाने के लिए कोई-न-कोई योग जरूर काम करेगा।

इस युग में वैसे तो बहुत लोगों ने योग पर लिखा है, पर सबसे अच्छे लेख हैं हमारे गुरु, स्वामी शिवानन्दजी के। उन्होंने सब विषयों पर किताबें लिखी हैं, सब कुछ अच्छी तरह से, विस्तार से समझाया है। योग का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर तुम खुद एक ऐसे योग शिक्षक बन सकते हो कि अपने मानसिक दु:खों को दूर करने की इच्छा लिए जो भी व्यक्ति तुम्हारे सम्पर्क में आएगा, उसकी तुम मदद कर सकोगे। हमने भी बहुतों की मदद की, क्योंकि हमको योग मालूम था। अब तो हम सिखाते नहीं हैं, क्योंकि अब हम अलग हट गए हैं। अब स्वामी निरंजन हैं, स्वामी सत्संगी हैं, अन्य लोग हैं। लेकिन इस बात को हमेशा याद रखो, योग में बहुत दूर तक तुम जा सकते हो।

– 'रिखियापीठ सत्संग-4' से उद्धृत

प्रत्याहार में प्रवेश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योग में क्रमानुसार अभ्यास बहुत महत्त्व रखता है। इस बात को आम लोग समझते नहीं। बिना किसी बुनियादी तैयारी के वे सीधे उच्च साधना में जाना चाहते हैं। जिन साधकों ने योग के चरणों का क्रमिक रूप से अनुसरण किया है, वही जीवन में कुछ बन पाये हैं, अपने जीवनकाल में सिद्ध बने हैं। लेकिन जो अपने मन का स्वभाव समझे बगैर नयी अनुभूतियों की खोज में सदा छलांग लगाते रहे हैं, वे आज भी एक जगह से दूसरी जगह छलांग ही लगा रहे हैं, अभी तक स्थिर आधार नहीं पा सके हैं। यही सच्चाई है। क्रिया योग और कुण्डलिनी योग पर जगह-जगह अनेक सत्र चलते हैं, और ढेरों लोग अपनी कुण्डलिनी जगाने के लिए उनमें भाग लेने आते हैं, लेकिन मन और हृदय को व्यवस्थित किये बिना कुण्डलिनी का जागरण पागलपन की ओर ही ले जाएगा।

दुनियाभर में हुए अनुसंधानों ने यह स्पष्ट किया है कि कुण्डलिनी तुम्हें साइकोसिस जैसी विकृत मनोदशा तक भी ले जा सकती है और चेतना की उच्चतम अनुभूति तक भी। कुण्डलिनी का नकारात्मक पक्ष साइकोसिस की ओर ले जायेगा और सकारात्मक पक्ष प्रबुद्धता की ओर। तुम्हें इस तथ्य की सम्यक् जानकारी होनी चाहिए, इसके बाद ही सांसारिक से आध्यात्मिक जीवन की ओर जाने का प्रयास करना चाहिए। यहीं पर महर्षि पतंजलि के प्रत्याहार और धारणा के अभ्यास महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे महत् के नियंत्रण में बहुत सहायता करते हैं। ध्यान महत्त्वपूर्ण नहीं है, प्रारम्भ में तुम इसकी उपेक्षा कर सकते हो। पहले प्रत्याहार में पारंगत हो जाओ और फिर धारणा की अवस्था की ओर बढ़ो।

योग निद्रा–प्रत्याहार का प्रथम अभ्यास

प्रत्याहार की प्रक्रिया में अन्तर्मुखता का जो प्रथम अभ्यास सिखाया जाता है, वह योग निद्रा का है। इस प्रारम्भिक अभ्यास में भी लोग अपनी मनोवस्था पर नियंत्रण नहीं रख पाते। तब फिर वे ध्यान की उच्चतर अवस्थाओं में कैसे प्रवेश कर सकते हैं? प्रशिक्षक निर्देश देता है–'योग निद्रा के अभ्यास के दौरान सोना नहीं', लेकिन इधर निर्देश का उच्चारण हुआ नहीं कि उधर अभ्यासी खर्राटे लेने लगते हैं!

प्रारम्भिक दिनों में जब मैं योग निद्रा सिखलाता था, तब मैं देखता था कि मेरे निर्देशों के बावजूद मेरे विद्यार्थी अक्सर योग निद्रा के दौरान सो जाते थे। मैंने इसके लिए बहुत-से उपाय आजमाए। एक बार कोलम्बिया में मैंने अपने विद्यार्थियों से कहा, 'आज आप लोग योग निद्रा का अभ्यास खड़े होकर कीजिये।' पर यह बहुत

बड़ी भूल साबित हुई। अभ्यास के लिए जो तीस व्यक्ति पंक्ति में खड़े हुए उनमें से अन्तिम व्यक्ति सो गया और सामने की ओर गिर पड़ा। फिर क्या था, एक के बाद एक सभी व्यक्ति गिरते चले गये! मेरी समझ में आ गया कि अधिकांश लोगों का अपनी मनोवस्थाओं पर कोई नियंत्रण नहीं है। अगर कोई व्यक्ति खड़े-खड़े सोने लग सकता है और उसके बाद गिर भी सकता है, तो मैं नहीं समझता कि वह व्यक्ति कभी ध्यान के अभ्यास में सफल हो सकता है। ऐसे व्यक्ति के लिए इतना ही पर्याप्त है कि वह योग निद्रा के माध्यम से तनाव-मुक्ति प्राप्त करे।

अन्तर्मौन द्वारा मन की गहराइयों में उतरना

योग निद्रा द्वारा तनाव-मुक्ति के बाद, मन के गहन आयामों में उतरने के लिए अन्य विधियों का सहारा लिया जाता है, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है अन्तर्मौन का अभ्यास।

देखा जाए तो मनस् एक तरह से अहंकार, चित्त और बुद्धि के लिए खेल का मैदान है, जहाँ ये तीनों अपने-अपने व्यवहार प्रकट करते हैं। अन्तर्मौन में जब तुम अपनी आन्तरिक अवस्थाओं को देखते हो और वहाँ कोई विचार या अनुभव दिखाई देता है, तब उसे पकड़कर उसकी जड़ तक जाने का प्रयास करते हो। उस विचार को तुम अन्दर ले जाने वाली रस्सी के रूप में उपयोग करते हो। कभी तुम बुद्धि की ओर जाते हो, क्योंकि विचार बुद्धि से आया है। कभी चित्त तक चले जाते हो, क्योंकि अनुभव चित्त से आया है। कभी अहंकार तक पहुँच जाते हो, क्योंकि किसी अहंकार-जनित मूल-प्रवृत्ति ने मनस् को प्रभावित किया है। अन्तर्मौन के दौरान मन में उठ रहे विचारों के अनुसार तुम बुद्धि, चित्त, अहंकार या मनस् तक पहुँच सकते हो। यही क्षमता अन्तर्मौन को एक अत्यन्त प्रभावशाली अभ्यास बना देती है।

प्राय: लोग सोचते हैं कि अन्तर्मौन मात्र आन्तरिक मौन का अभ्यास है जिसमें व्यक्ति चुपचाप अपने विचारों का अवलोकन करता रहता है। लेकिन यह सिर्फ अन्तर्मौन का प्रथम चरण है। तुम लोग प्रथम चरण से आगे नहीं बढ़े पाये हो, इसलिए तुम्हें अगले चरणों के विषय में बताया नहीं गया है। बहुत कम लोग आगे के चरणों में पहुँच पाते हैं, क्योंकि अधिकांश लोग यही समझते हैं कि अन्तर्मौन की साधना 'अपने विचारों को देखो, उन्हें स्वीकार करके उन्हें जाने दो, मन को खाली रखो'—बस यहीं तक सीमित है। इस चरण के आगे कोई बढ़ता ही नहीं। लेकिन अगर इस साधना को समुचित रूप से किया जाए तो यह बुद्धि, चित्त और अहंकार तक पहुँचने की सबसे प्रभावी विधि हो सकती है।

इस तरह मन के एक पक्ष को अन्तर्मौन द्वारा समझा जा सकता है। अभी मैं कुछ ही अभ्यासों की चर्चा कर रहा हूँ जो सरल और सर्वविदित हैं, पर इनका महत्त्व अच्छी तरह समझना होगा।

'स्वान' सिद्धान्त द्वारा आसक्तियों का प्रबन्धन

जब बुद्धि किसी वस्तु या व्यक्ति के साथ जुड़कर एक आसक्ति उत्पन्न करती है, उस समय वह एक अन्य भूमिका भी निभाती है। बुद्धि उस वस्तु या व्यक्ति का विश्लेषण करना प्रारम्भ करती है—यह मेरे लिए अच्छा है या बुरा, इसे स्वीकार करना चाहिए या नहीं। इस प्रक्रिया के माध्यम से तुम अपनी आसक्ति को एक पहचान, एक रूप, एक आकृति दे रहे हो। जब आसक्ति प्रगाढ़ हो जाती है, तब उस वस्तु से तुम्हारा तादात्म्य हो जाता है, मानो वह तुम्हारी ही है। 'यह मेरी चीज है'—जब ऐसा भाव आ जाता है, तब द्रष्टा भाव बनाये रखना कठिन हो जाता है।

योग का प्रथम निर्देश और नियम है—अपनी सजगता को इस हद तक बढ़ाओ कि तुम अपने बाहर-भीतर होने वाली सभी गतिविधियों के द्रष्टा बन सको। योग सूत्रों में कहा गया है—*तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्*। व्यक्ति को मन की ऐसी अवस्था में स्थापित होना है जहाँ उसकी अन्तर्दृष्टि से कुछ भी छिपा न रहे। सभी चीजों का अवलोकन होना है, हर घटना और विचार के प्रति सजग रहना है। यह सजगता सहज और स्वाभाविक होनी चाहिए। तुम्हें अपने आप से बार-बार यह न कहना पड़े कि 'मुझे सजग रहना है।' ऐसे चिन्तन से तो तुम्हारे भीतर तनाव ही पैदा होगा। लेकिन जब यह प्रक्रिया सहजता से होती है तब तुम सारा समय द्रष्टा बने रह सकते हो। इसके विपरीत जब तुम अपने आप से संघर्ष कर रहे होते हो, तब चंद क्षणों के लिए ही द्रष्टा भाव का अनुभव होता है।

योग में संघर्ष नहीं, सजगता का विकास किया जाता है। सजगता विकसित होने पर जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर आसक्तियाँ उत्पन्न होती जाती हैं, वैसे-वैसे तुम उनका विश्लेषण भी करते जाते हो। 'मैं अमुक वस्तु की कामना क्यों करता हूँ?

क्या यह मेरी आवश्यकता है, या मात्र एक सम्मोहन है? मैं अमुक व्यक्ति के सान्निध्य में क्यों हूँ?' अस्सी प्रतिशत से अधिक मामलों में तुम पाओगे कि वह आसक्ति तुम्हारी आवश्यकता नहीं, मात्र एक सम्मोहन है, किसी चीज को पाने की स्वार्थभरी कामना।

'स्वान' सिद्धान्त अपने सामर्थ्यों, दुर्बलताओं, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं को पहचानने का साधन है। इसके द्वारा अपनी बुद्धि के आयाम का विश्लेषण करो। तुम्हारे अंत:करण में कौन-से सामर्थ्य और कौन-सी दुर्बलताएँ हैं? तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाएँ क्या हैं? तुम्हारे जीवन की वास्तविक आवश्यकताएँ क्या हैं? अगर तुम अपनी अपेक्षाओं और इच्छाओं का इन चार श्रेणियों में वर्गीकरण कर सकते हो, अगर तुम अपने सामर्थ्यों, दुर्बलताओं, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं के आलोक में अपने आप को समझ सकते हो, तब तुम आसक्तियों के बन्धन से मुक्त हो सकते हो। लोग कहते हैं, 'मुझे अपने आपको विषय-वस्तुओं से दूर करना है।' तुम कैसे दूर हो सकते हो? किसी चीज से दूर भागने की कोई आवश्यकता नहीं। मात्र अपनी आवश्यकताओं और महत्त्वाकांक्षाओं के सन्दर्भ में विषय-वस्तुओं का मूल्यांकन और विश्लेषण करो। अगर किसी चीज से तुम्हारी आसक्ति तुम्हारी आवश्यकता पर आधारित है तो वह उचित है। अगर आसक्ति का कारण तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा है तो तुम्हें उस पर दुबारा विचार करना चाहिए, क्योंकि वह तुम्हें संतोष और तृप्ति नहीं प्रदान कर सकती। बल्कि उससे और अधिक महत्त्वाकांक्षाएँ और कामनाएँ ही जन्म लेंगी। स्वान सिद्धान्त द्वारा अपनी सजगता विकसित कर तुम बुद्धि के व्यवहारों को व्यवस्थित करने में सक्षम हो सकते हो।

अजपा-जप द्वारा चित्त में प्रवेश

चित्त संस्कारों और कर्मों का भण्डार-गृह है। अंत:करण के इस आयाम तक पहुँचना सरल नहीं। अपने संस्कारों को जानना-समझना अत्यन्त कठिन है। इस समय हम कौन-से कर्मों को जी रहे हैं, यह जानना बहुत मुश्किल है। यह अनुमान लगाना भी कठिन है कि वर्त्तमान संस्कारों और वासनाओं के आधार पर हमारी भावी अपेक्षाएँ

क्या होंगी। चित्त तक पहुँचने के लिए प्रत्याहार और धारणा के एक अन्य अभ्यास, अजपा-जप का उपयोग किया जाता है।

अजपा-जप श्वास की चेतना के साथ मंत्र-जप करने का अभ्यास है। शान्त होकर बैठ जाओ और नाभि से भ्रूमध्य तक चल रही श्वास का अनुभव करो। जब तुम श्वास लेते हो तब ऐसा अनुभव करो कि श्वास नाभि से भ्रूमध्य तक आ रही है। जब श्वास छोड़ते हो तब उसे भ्रूमध्य से नाभि तक आता अनुभव करो। फिर श्वास की गति के साथ एक मंत्र 'सोऽहं' जोड़ दो। सोऽहं श्वास का बीज मंत्र है।

अजपा-जप का अभ्यास करते-करते तुम्हें झपकियाँ आने लगेंगी, क्योंकि तुम्हारे स्नायविक तनाव समाप्त होते जाएँगे। स्नायविक तनावों के समाप्त होने पर मानसिक तनाव भी कम होते जाएँगे और मन अन्तर्मुखी होता जाएगा। जब मन अन्तर्मुखी हो जाता है तब इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध कट जाता है। इन्द्रियों से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर तुम्हें झपकियाँ आने लगती हैं। उस समय जगे रहने के लिए एक ही साधन तुम्हारे पास रह जाता है और वह है, मंत्र की सजगता। पन्द्रह-बीस मिनट तक श्वास के साथ सोऽहं मंत्र जपने से मन एक शांत, निश्चल अवस्था में पहुँच जाता है। इस निश्चल अवस्था में अतीत की स्मृतियाँ और संस्कार मन की सतह पर आने लगते हैं। एक सत्य घटना के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अजपा-जप कैसे काम करता है।

कई साल पहले दमे से पीड़ित एक व्यक्ति आश्रम आया। अपनी बीमारी से मुक्ति पाने के लिए वह सभी प्रकार की चिकित्सा पद्धतियाँ आजमा चुका था, लेकिन कोई भी दवा या प्रणाली कारगर सिद्ध नहीं हुई थी। उसके दमे के दौरे भी बहुत तीव्र हुआ करते थे। उन दिनों श्री स्वामीजी आश्रम में ही थे। उन्होंने उस नवयुवक से कहा, 'अजपा-जप का अभ्यास शुरू करो, बाकी सारी दवायें छोड़ दो। अगर तुम्हें उन दवाओं से आज तक फायदा नहीं हुआ तो अगले दो-चार सप्ताह में भी कुछ होने वाला नहीं। दवा बन्द करो और अजपा-जप का अभ्यास करो।' उस व्यक्ति ने श्री स्वामीजी के निर्देशानुसार अभ्यास करना शुरू किया क्योंकि उसे गुरु के शब्दों में श्रद्धा और आस्था थी। दवायें छोड़कर वह अजपा-जप का अभ्यास करने लगा।

लगभग एक महीने बाद उसे ध्यान में अपने बचपन से सम्बन्धित एक घटना दिखाई पड़ी। उस घटना को वह पूरी तरह भूल चुका था लेकिन ध्यान में वह स्मृति सतह पर उभर आई। तत्क्षण वह दमे से मुक्त हो गया। तब से आज तक उस व्यक्ति को दमे का एक भी दौरा नहीं पड़ा। और यह घटना हाल की नहीं, बीस-पच्चीस साल पहले की है। जब वह व्यक्ति अपने देश लौटा उसने डॉक्टरों से अपनी जाँच करायी, यह जानने के लिए कि वह दमे से पूर्णतया मुक्त हो गया है या नहीं। जाँच ने स्पष्ट कर दिया कि वह दमे से मुक्त हो गया था।

जहाँ दवा असफल रही, वहाँ ध्यान काम आया। इसका कारण यही है कि ध्यान की प्रक्रिया उस स्मृति को उभारने में सक्षम हुई जो समस्या की जड़ थी। उस स्मृति को, उस स्मृति में निहित व्यथा और पीड़ा को स्वीकार कर लेने के पश्चात् वह व्यक्ति उस स्मृति से उत्पन्न समस्या से मुक्त हो गया।

तुम्हारे व्यवहार और मानसिकता को प्रभावित करने वाली प्रच्छन्न स्मृतियों और संस्कारों को बाहर खींच निकालने के लिए अजपा-जप एक बहुत प्रभावी साधना है। अजपा-जप तुम्हें अपने मन, हृदय और अन्तरात्मा में सम्यक् रूप से स्थापित करता है। वेदों और उपनिषदों में इस साधना की बहुत प्रशंसा की गई है। आध्यात्मिक ग्रन्थों में इस साधना को प्रमुख स्थान इसलिए दिया गया है कि यह मन में दबे संस्कारों और कर्मों को हटा देने की अपूर्व क्षमता रखती है।

चिदाकाश धारणा द्वारा चेतना के प्रतीकों का ज्ञान

मन के गहन स्तरों को समझने के लिए धारणा का एक अभ्यास भी किया जाना चाहिए। अजपा-जप के माध्यम से जैसे-जैसे तुम मन की गहराइयों में प्रवेश करते हो, वैसे-वैसे वहाँ छिपे संस्कार प्रतीकों के रूप में सतह पर आते हैं। उन प्रतीकों का अर्थ समझने के लिए तुम्हें तत्पर रहना चाहिए।

शब्दों का उपयोग तो अन्य व्यक्तियों से वार्त्तालाप करने के लिए किया जाता है, पर तुम आन्तरिक रूप से कैसे सोचते हो? क्या सोचने के लिए भी शब्दों का उपयोग करते हो? नहीं। जब कोई विचार मनस् के स्तर पर पहुँचता है तभी तुम उसे शब्दों के रूप में अनुभव करते हो। उसके पहले विचारों का स्वरूप शब्दों का नहीं, प्रतीकों का रहता है। चित्त प्रतीकों द्वारा निर्दिष्ट होता है क्योंकि वही चेतना की भाषा है। शब्द और वाक्य इन्द्रियों की भाषा हैं और प्रतीक चेतना की।

प्राय: तुम इन प्रतीकों को उन चीजों से जोड़ देते हो जिन्हें तुम पहले से जानते हो। अगर ध्यान में तुम्हें कोई प्रतीक या दृश्य दिखाई देता है, तो बुद्धि तुरंत सक्रिय हो उठती है और कहती है, 'यह दृश्य मुझे पसन्द है क्योंकि यह बहुत सुन्दर है। इसे देखने से मुझे शान्ति का आभास होता है।' एक बार बुद्धि सक्रिय हो गई तो फिर प्रतीक का प्रभाव क्षीण हो गया। वह केवल एक रूप बनकर रह गया जो तुम्हें पसन्द आया। तुम दूसरा दृश्य देखते हो और बुद्धि कहती है, 'नहीं, मुझे यह दृश्य पसन्द नहीं। यह भद्दा और नकारात्मक है।' तुम्हारी बुद्धि चित्त से उभरते प्रतीकों को देखने-समझने की प्रक्रिया रोक देती है, और इसीलिए तुम्हारे दबे संस्कारों का निष्कासन नहीं हो पाता।

प्रतीकों की भाषा समझने और उन्हें सतह पर लाने की विधि है—चिदाकाश धारणा। इस अभ्यास के प्रथम चरण में तुम अपने मन में आकृतियों और चित्रों का निर्माण करते हो। इससे प्रतीकों को समझने की क्षमता विकसित होती है। आगे

चलकर जब ध्यान में चेतना की गहराइयों से प्रतीक ऊपर आते हैं तब यह क्षमता काम आती है। चिदाकाश धारणा के अभ्यास में शिक्षक कहेगा, 'अपने मन में एक त्रिभुज की आकृति बनाओ। अब एक और त्रिभुज बनाओ ... एक और ... एक और। अब एक चतुर्भुज बनाओ ... एक और ... एक और। एक वृत्त बनाओ ... एक पंचभुजी सितारा ... एक की संख्या, दो, तीन, चार ...।' इस प्रकार तुम्हें अपने मन में प्रतीक बनाने के क्रम में ले जाया जाता है। जब तुम इस हद तक अपनी सजगता विकसित कर लेते हो कि सभी स्वनिर्मित प्रतीकों को याद रख सकते हो, तब तुम प्रतीक बनाना बन्द कर देते हो और आन्तरिक प्रतीकों को उभरने देते हो। प्रतीकों के उभरने पर मन के एक स्तर पर तुम समझना प्रारम्भ करते हो कि तुम्हारे लिए उन प्रतीकों का क्या अर्थ है, बशर्ते तुम अपनी बुद्धि को इस प्रक्रिया से अलग रख सको।

एक सुन्दर प्रतिमा का निर्माण

अजपा-जप और चिदाकाश धारणा क्रमशः प्रत्याहार और धारणा के अभ्यास हैं जिनके माध्यम से हम अपने चित्त में प्रवेश करने और उसे समझने में सक्षम होते हैं। स्वान-सिद्धान्त बुद्धि को व्यवस्थित करने का उपाय है, और योग निद्रा एवं अन्तर्मौन अहंकार-प्रबन्धन की विधियाँ हैं।

इन विधियों का यदि नियमित रूप से अभ्यास किया जाए तो ये अनेक लाभ दे सकती हैं। पर यह याद रखना कि इन सब में समय लगता है। इससे पहले कि

तुम्हारा मन सांसारिकता से पूरी तरह भर जाए, अपनी आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ कर दो। हमेशा याद रखो कि किसी भी निर्माण-कार्य में बहुत अधिक समय लगता है जबकि विनाश-कार्य में बहुत कम।

अगर किसी भवन को नष्ट करना चाहो, एक सप्ताह में वह पूरा धराशायी हो जायेगा, लेकिन अगर उस भवन को बनाना चाहो तो उसमें महीनों लग जायेंगे। आध्यात्मिक जीवन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। अगर अपने अन्दर कुछ सकारात्मक सृजन करना चाहते हो तो इस कार्य के लिए समय दो। तात्कालिक परिणाम की अपेक्षा मत करो। अगर तत्काल परिणाम चाहते हो तो जान लो कि योग और आध्यात्मिक जीवन तुम्हारे लिए नहीं है। जाकर समाज और संसार में आराम से रहो। निर्माण-कार्य सम्पन्न करने के लिए तो तुम्हें समय लगाना होगा। कोई भी चीज बनी-बनायी नहीं आती।

योग एक अनुशासन है। यह भोग के लिए किया जाने वाला कोई अभ्यास नहीं, बल्कि एक कठोर और गम्भीर अनुशासन है, और इसे तुम्हें इसी रूप में समझना और स्वीकार करना होगा। अपनी साधना के विषय में मन-मौजी मत बनो, 'चलो आज मैं यह अभ्यास कर लेता हूँ क्योंकि शरीर को थोड़ा लचीला करने का मन कर रहा है।' थोड़ी फेर-बदल अपनी जगह ठीक है, लेकिन साथ ही अपनी साधना और संकल्प के प्रति गम्भीर और दृढ़संकल्प बनो। एक बेहतर मनुष्य बनने के लिए और अधिक प्रयास करो। यह मत सोचो कि बेहतर बनना सरल है। एक शिल्पकार को भी पहले पत्थर का एक अनगढ़ खण्ड ही मिलता है जिसपर फिर अपनी छेनी-हथौड़े के साथ वह कड़ी मेहनत करता है, जब तक वांछित प्रतिमा तैयार नहीं हो जाती। अगर शिल्पकार छेनी-हथौड़ा छोड़ दे तो वांछित प्रतिमा कभी नहीं उभरेगी, प्रस्तर-खण्ड जैसे का तैसा रह जायेगा। शायद यहाँ-वहाँ एक-आध गड्ढे या खरोंचें दिखाई पड़ें, जहाँ शिल्पकार ने अपनी छेनी आजमायी। यहाँ आने वाले बहुत-से लोगों के चेहरों पर छेनी के निशान मिल जाते हैं, लेकिन किसी ने प्रतिमा को पूरा नहीं होने दिया है। स्वयं को एक सुन्दर प्रतिमा बनने दो, इसके लिए भरसक प्रयास करो। आखिर इस काम के लिए ही तो तुम्हें यह जीवन मिला है।

गुरु ब्रह्मा हैं, क्योंकि वे अपने शिष्य के लिये एक नये, अद्भुत जगत् का सृजन करते हैं। वे विष्णु हैं, क्योंकि वे उसे संबल और सुरक्षा प्रदान करते हैं। और वे शिव हैं, क्योंकि वे उसके अहंकार और अज्ञान का विध्वंस करते हैं।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

गुरु पूर्णिमा का संकल्प

स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

आज गुरु पूर्णिमा के महान् दिन और शुभ पर्व पर मैं पूज्य गुरुजनों के चरणों में प्रणाम करके कुछ शब्द कहना चाहूँगी। अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी का आशीर्वाद मेरे साथ बहुत रहा है। गुरुजी से मैं पहली बार सन् 1953 में मिली। ऋषिकेश में उनके दर्शन हुए जब परम गुरुदेव, स्वामी शिवानन्द जी के चरणों में हम पहुँचे थे। उस समय स्वामी सत्यानन्द जी को वहाँ देखकर मुझे लगा कि ये ध्रुव-प्रह्लाद जैसे छोटे-से बालक यहाँ पर कहाँ से आ गये। उसके बाद जब हम लोगों ने स्वामी शिवानन्द जी से अनुरोध किया कि हमारे यहाँ राजनाँदगाँव में प्रवचन के लिए किसी को भेजिए तो उनका यही उत्तर था कि आपका प्रान्त हिन्दी भाषी है और मेरे यहाँ सब दक्षिण भारतीय संन्यासी हैं, सिर्फ एक संन्यासी है जो हिन्दी, अँग्रेजी और संस्कृत समझता है। लेकिन वह मेरा सेक्रेटरी है, मेरी पुस्तकों का अनुवाद करता है, प्रूफ देखता है, 'योग वेदान्त' का संपादक है और बैंक-मार्केटिंग आदि सब काम वही करता है। पर कभी भेजूँगा उसको। इस तरह तीन वर्ष बीत गये।

सन् 1956 में जब श्री स्वामीजी परिव्राजक जीवन के लिए निकले और दिल्ली में निवास कर रहे थे तब स्वामी शिवानन्द महाराज का पत्र हमें मिला कि आप लोग हमेशा स्वामी सत्यानन्द को बुलाते थे न, अब बुलाइये और उनके खूब प्रोग्राम बनाइये, उनकी खूब मदद कीजिए। प्रभु की कृपा कि वे हमारे यहाँ आये और हम लोग इस तरह रहने लगे मानो कभी एक-साथ ही थे, पर किसी कारण बिछुड़ गये थे। हमने कभी उनको न बड़ा समझा, न पराया समझा, बल्कि अपने परिवार का एक आत्मीय सदस्य माना।

आगे चलकर उनके प्रोग्राम बनाते रहे, काम चलता रहा, वे आते-जाते रहे। हम लोग कई सालों से 'योग वेदान्त' पढ़ रहे थे और उसमें गुरु पूर्णिमा के बारे में भी बहुत कुछ पढ़ने को मिला था। सन् 1956 की गुरु पूर्णिमा में हम ने भी उसी तरह से योजना बनायी और उनकी पूजा की तैयारी की।

उन्होंने कहा, 'देखो, पूजा गुरु की होती है, मैं तो मात्र शिष्य हूँ।' हमने कहा, 'नहीं, आप गुरु के प्रतिनिधि हैं। हम लोग आप ही की पूजा करेंगे।' उन्होंने जवाब में कहा, 'मैं न तो कभी गुरु बनूँगा और न ही आश्रम बनाऊँगा। इसलिए मेरी पूजा मत करो।' पर हम लोगों ने ज़िद की, 'नहीं, हम तो आपकी पूजा करेंगे।' खैर, अन्त में पूजा हुई, हम लोगों ने उनको गुरु माना, हालाँकि उन्होंने इस पद को कभी स्वीकार नहीं किया।

इस तरह समय बीतता गया और प्राय: हर गुरु पूर्णिमा में मैं उनके चरणों के पास बैठने का सौभाग्य माँग पाती थी। संयोगवश बीच में बहुत-सी घटनाएँ हुईं और सन् 1958 में उन्होंने हमको दीक्षा दी। तब से तो फिर हमारा सम्बन्ध गुरु और शिष्य का ही हो गया। हम लोग उनके साथ रहते, उनका काम करते, उनके प्रोग्राम बनाते। उनके बारे में जो देखा, सुना, समझा और अनुभव किया, वह यही कि वे एक महान् आत्मा हैं, जिनमें ईश्वरीय शक्ति की प्रचुर धारा बह रही है। वे सचमुच गुरु बनने के योग्य हैं। शिवानन्द जी महाराज ने उनको इस तरह की शिक्षा दी कि वे वास्तव में एक महान् गुरु बने और गुरु बनकर एक ऐसा आदर्श हम लोगों के सामने रखा, जिस पर हमें अभिमान हो। एक संन्यासी को अभिमान नहीं करना चाहिए, लेकिन इस विषय में हम जरूर अभिमान से कहते हैं कि हम उनके शिष्य हैं और वे हमारे गुरु थे, गुरु हैं और गुरु रहेंगे।

आज गुरु पूर्णिमा की पावन, पवित्र और शुभ घड़ी में हम चाहते हैं कि इस दिन को एक संकल्प दिवस के रूप में माने। जो कुछ हमने उनसे सुना, समझा और जाना है, उसमें से कुछ शब्द हम अपने जीवन में ले लें। उनका कोई एक आदर्श, चाहे उनका सेवाभाव, कर्त्तव्यपरायणता या गुरु के प्रति निष्ठा, कुछ भी लेकर हम आज संकल्प लें कि हम इस तरह अपने जीवन को उनके प्रति समर्पित करते हैं। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

हम उनके साथ हर गुरु पूर्णिमा में रहे, जगह-जगह साथ गये, उनका सत्संग-प्रवचन सुना, बातें सुनीं, उनसे झगड़ा किया और उनसे दुलार भी पाया। उन महान् गुरु के पदचिह्नों का अनुसरण करते हुए हम उनके पीछे-पीछे यहाँ मुंगेर

भी आ गये, उनका काम करते रहे और आज ऐसा दिन भी आया कि हम उनकी छाया-मात्र के लिए तरस रहे हैं। लेकिन हमारा यह संकल्प है कि वे हमारे साथ हैं, हमारा जीवन उन्हीं का जीवन है, हमारा सब कुछ उनका ही है। हमारा कुछ भी नहीं है, हम जो कुछ कर रहे हैं, उनके लिए ही कर रहे हैं।

इसी तरह जीवन बीतते-बीतते हमने जो देखा, सुना और समझा, उससे तो हम यही समझते हैं कि वे एक देव, महान् ऋषि, अद्भुत संत और महामानव हैं, उनके जैसे लोग आजकल दुनिया में हैं ही नहीं। उन्होंने अपने कितने रूप दिखाये। जब मैं उनके साथ रही, वे मेरे पिता थे, भाई थे। अब गुरु हैं, भगवान हैं, मेरे सर्वस्व हैं। मैं जब उन्हें याद करती हूँ तब अंदर से इतनी खुशी होती है कि कितनी भाग्यशाली हूँ मैं, इतने दिनों तक एक देवता के सम्पर्क और छत्र-छाया में रही, उनका काम करती रही। अभी भले ही कुछ कर नहीं सकती, लेकिन उनकी बातें तो कह सकती हूँ, उनके बारे में बता तो सकती हूँ। उनकी यात्रा चलती रहे, उनका काम होता रहे।

शिवानन्द जी महाराज का आशीर्वाद हमेशा उनके साथ था, जिसके बूते पर उन्होंने भगीरथ जैसा असाध्य काम कर दिखाया। मैं इतने वर्षों से देख रही हूँ, आज स्वामी शिवानन्द जी के हजारों शिष्य दुनिया में सब ओर फैल गए हैं। सब योग का काम कर रहे हैं, योग का प्रचार कर रहे हैं, लेकिन उनके नाम से नहीं, अपने नाम से। और हमने अपने श्री स्वामीजी को देखा, उनका हर काम गुरु जी को समर्पित था। गुरु का नाम, गुरु का काम, अपना कुछ नहीं। ऐसे होते हैं सच्चे संन्यासी और ऐसी होती है सच्ची गुरु सेवा। वे हम लोगों के सच्चे गुरु हैं। भले ही वे स्वयं को गुरु न मानते हों, लेकिन हम उन्हें गुरु मानते हैं, क्योंकि हम ने उनके साथ रहकर जो अनुभव किया, वह यही कि वे सर्वसमर्थ और सर्वशक्तिमान् थे, जो चाहे कर सकते थे।

उनके जीवन का हर पड़ाव बीस वर्ष के क्रम से चलता रहा। घर में रहे बीस वर्ष, गुरु आश्रम में रहे बीस वर्ष, कार्य क्षेत्र में रहे बीस वर्ष और उन्होंने जिस साधना और संन्यास धर्म का पालन किया, उसमें भी बीस वर्ष रहे। बड़ी शांति से सबसे मिलते-जुलते, काम करते। एक दिन भी निष्क्रिय नहीं रहे कि आज मैं थक गया, या आज मैं यह काम नहीं कर सकता। करते रहे काम आखिर तक। वे चाहते तो बीस वर्ष और रह सकते थे, लेकिन उन्होंने यही सोचा कि मेरा मन पक्का है, लेकिन शरीर पक्का नहीं रहेगा। इसलिए मुझे जाना है, जाना है और जाना है। और वे ऐसे आराम से गये जैसे हम लोग बद्री-केदार जाते हैं। सुना था कि केदारनाथ से पाण्डवों के सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर सीधे स्वर्ग चले गये थे, पहाड़-ही-पहाड़ चढ़ कर। वैसे ही श्री स्वामीजी भी चले गये हम लोगों को छोड़ कर।

लेकिन उनका आदर्श, उनका काम, उनका नाम हमारे साथ है। और उनके नाम के पीछे, उनके गुरु का नाम। हम भी कितने भाग्यवान् हैं कि शिवानन्द महाराज की परम्परा से जुड़ने का अवसर मिला। वे एक आदर्श संन्यासी थे, जिन्होंने योग को पूरी

दुनिया में फैलाया। उनके पहले जितने संन्यासी या महात्मा हुए, सब अपनी साधना करते रहे। अपना भविष्य उज्ज्वल बनाया, लेकिन दुनिया के लिए कुछ नहीं किया। बाद में कुछ लोगों ने दो-चार पुस्तकें भी लिख दीं, लेकिन ऐसा कोई ठोस काम नहीं हुआ जिससे लोग कुछ सीख सकें, समझ सकें। शिवानन्द महाराज ने सबका आह्वान किया, 'हिमालय में बैठकर साधना करने वालों! पहाड़ों से नीचे आओ और भारत में घूम-घूमकर प्रचार करो।' यही काम उन्होंने स्वयं किया। देश और विदेश में फैले उनके शिष्य आज भले ही उनका नाम न लें, लेकिन काम उन्हीं का कर रहे हैं।

किसी आदमी के भले ही दस लड़के रहें, लेकिन नाम एक से चलता है। वैसे ही स्वामी शिवानन्द जी का नाम स्वामी सत्यानन्द जी से, जिन्हें वे लाड से सत्यम् कहा करते थे, चल रहा है। शिवानन्द जी सत्यम् को बहुत चाहते थे, बहुत मानते थे। शिवानन्द जी के आदर्श का पूरा दायित्व सत्यम् पर रहा, जिसे उन्होंने अच्छी तरह से निभा भी लिया।

हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि आज के दिन एक संकल्प लें कि उनके काम को हम जरूर पूरा करेंगे और जो वे कहा करते थे, वही करेंगे। वे फिर हमारे बीच आयेंगे, और हम रहें या न रहें, लेकिन वे दुनिया को अलग रास्ता जरूर दिखायेंगे। मैं ज्यादा नहीं बोल सकती, बस इतना और उनके बारे में कह सकती हूँ कि मेरी रग-रग में, नस-नस में उनके शब्द हैं। मैं धन्य हूँ, जो उनकी कर्मभूमि में बैठी हूँ, उनका काम देख रही हूँ, उनका नाम सुन रही हूँ। मेरे लिए यह महान् अभिमान की बात है। असीम गौरव है मुझे कि मैं उनकी शिष्या हूँ।

–25 जुलाई 2010, गुरु पूर्णिमा, गंगा दर्शन

गुरु-लीला

स्वामी शंकरानन्द सरस्वती

मुझे गुरुजी के दर्शन का सौभाग्य सबसे पहले सन् 1965 में प्राप्त हुआ। आश्रम 1963 में स्थापित हुआ था, 1964 में इसका उद्घाटन हुआ और 1965 में यहाँ दूसरा विश्व योग सम्मेलन हुआ था, जिसका संचालन स्वयं स्वामीजी ने किया था। किसी परिचित व्यक्ति ने मुझसे कहा कि एक संन्यासी हैं, यहाँ आश्रम चलाते हैं, वहाँ सात दिनों का एक सम्मेलन हो रहा है, चलना चाहो तो चलो। मैंने कहा, ठीक है चलेंगे। उस समय अतिथि शुल्क था पाँच रुपये। सात दिनों तक कार्यक्रम में भाग लेने का इतना ही शुल्क था।

सम्मेलन में मैं भी डेलिगेट बन गया। पहले दिन शाम को सम्मेलन में पहुँचा तो उसी दिन स्वामीजी का प्रथम दर्शन हुआ। मुझे लगा जहाँ पहुँचना था, समय से पहुँच गया। उसके बाद सात दिनों तक उस सम्मेलन में क्या होता रहा, कुछ पता नहीं चला। मैं केवल स्वामीजी को देखता और इन्तजार करता कि वे कब बोलेंगे।

सात तारीख को सम्मेलन खत्म हुआ तो मेरे बच्चों ने कहा कि हमलोग योग सीखना चाहते हैं। मैंने स्वामीजी से बात की तो उन्होंने कहा कि भेज दो। उन दिनों पन्द्रह दिनों का कोर्स होता था। स्वामीजी स्वयं क्लास लेते थे। उसकी फीस थी केवल पन्द्रह रुपये। हम सब परिवार के लोग सुबह आश्रम आते थे, क्लास करके चले जाते थे।

इसी बीच में दफ्तर और परिवार में कुछ ऐसी समस्याएँ हुईं कि काफी परेशानी लगी। मन में सोचा कि स्वामीजी से एक बार पूछूँगा इसके बारे में। पुराने आश्रम के हॉल के बगल में जो पहला कमरा है उन दिनों स्वामीजी उसी में रहते थे। ठण्ढ का समय था। शाम को मैं आया और हमलोग वहाँ बैठे। दस-पन्द्रह लोग थे, स्वामीजी आए तो सत्संग चला। सत्संग में किसी विषय पर बोलते हुए उन्होंने अचानक कहा, 'प्रेम चैतन्य, सुन रहे हो न?' दीक्षा के समय स्वामीजी ने मेरा नाम प्रेम चैतन्य रखा था। फिर अपने विषय पर आगे जो बोलना था उसे धाराप्रवाह बोलते चले गये। पुन: एक क्षण आया जब उन्होंने दुबारा मेरा नाम पुकारा, 'सुन रहे हो?' और उसके बाद सत्संग फिर आगे चला। सत्संग समाप्त होने पर सब लोग बाहर निकले। मैं और मेरी पत्नी एक-दूसरे को देख रहे थे। उन्हें संदेह था कि मैंने स्वामीजी से सारे प्रश्न कह दिये हैं, और मुझे लगता था कि शायद स्वामीजी को उन्होंने बताया था। जिस-जिस मुद्दे पर मेरे प्रश्न थे उन सभी का हमें उत्तर मिल गया! उसके बाद आज तक कुछ पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। तो पहला मिलना यह था।

वक्त गुजरता गया। इस बीच मैं आश्रम आता-जाता रहता था। कई बार ऐसा हुआ कि मैंने स्वामीजी से अनुरोध किया कि संन्यास दे दीजिए, पर वे टालते रहे। जब मैंने एक बार बहुत जिद की तो उन्होंने कहा, 'कम्बल भींगा हुआ है, जब तक सूखेगा नहीं तब तक ओढ़ोगे कैसे?'

मैं प्रतीक्षा करता रहा। सन् 1988 में स्वामीजी गंगा दर्शन से निकल गये। उन दिनों मेरा काम ऐसी जगह पर था कि मैं समय नहीं निकाल पाता था। 1990 के सम्भवत: अगस्त या सितम्बर महीने में मुझे देवघर जाने का मौका मिला। उस समय भी पता नहीं था कि स्वामीजी कहाँ हैं। मैं पटना लौटने के लिए जसीडीह स्टेशन आया तो देखा कि स्वामी गोरखनाथ वहाँ बैठे हुए हैं। मैंने पूछा, 'यहाँ क्यों बैठो हो?' स्वामी गोरखनाथ ने कहा, 'मैं अखाड़े में स्वामीजी से मिलने आया था।' 'वे यहीं रहते हैं?' 'हाँ, यहीं रहते हैं, 8 किलोमीटर की दूरी पर।'

उस समय मेरे साथ पूरा ग्रुप था, इसलिए मैं रुक नहीं सकता था। मैं पटना लौट गया और फिर पटना से प्रोग्राम बनाकर नवम्बर महीने में वहाँ गया। सुबह देवघर से रिखिया गया। गेट पर पहुँचा तो एक परिचित संन्यासी ने गेट खोला और कहा, 'प्रेम चैतन्य जी, आज भीतर नहीं आना है, कल सुबह साढ़े आठ बजे आइये।' वहीं से मैं लौट आया। दूसरे दिन जब साढ़े आठ बजे गया और गेट खुला

तो स्वामी निरंजन जी सामने खड़े थे। मुझे स्वामीजी की कुटिया में ले गये। उस कुटिया में एक चबूतरा था जिसपर स्वामीजी बैठे थे। मैं सामने बैठा और बगल में स्वामी निरंजन जी बैठ गये।

स्वामीजी ने पहले तो बच्चों का हालचाल पूछा, फिर कहा, 'देखो भाई, मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया है। मैंने गुरु का चोला भी छोड़ दिया है। मैं अब किसी का गुरु नहीं हूँ, मेरा कोई शिष्य नहीं है, मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं सिर्फ अपनी साधना करने के लिए यहाँ आया हूँ।' इसी चीज को उन्होंने कई बार कई ढंग से कहा। मैं उनसे थोड़ा ज्यादा फ्री था, मैंने कहा, 'स्वामीजी, यह तो ठीक है कि आपने निर्णय ले लिया, परन्तु हम लोगों का क्या होगा? हम लोग कहाँ जाएँ?' उन्होंने स्वामी निरंजन जी की तरफ इशारा किया, 'इसको तुम्हारी जरूरत है और तुमको इसकी।' उस दिन उन्होंने संन्यास के बारे में भी मना नहीं किया और उसके कुछ समय बाद मैं गंगा दर्शन आ गया।

गुरुजी के साथ एक और छोटी-सी आपबीती बता दूँ। बात शायद 1973 की है। स्वामीजी विदेश से आ रहे थे और मैं पटना में था। एक मित्र ने कहा, 'स्वामीजी हवाई जहाज से आ रहे हैं, चलियेगा मिलने?' मैंने कहा, 'जरूर, पर कैसे चलेंगे, हवाई अड्डा आठ किलोमीटर दूर है।' वे बोले, 'मैं गाड़ी लेकर आता हूँ।' तो

जैसा मैं था सुबह में, धोती और टी-शर्ट पहने हुए, बस ऊपर से एक चादर डाली और चला गया गुरुजी से मिलने। हवाई जहाज आया, सब लोगों ने प्रणाम किया। मैं जब प्रणाम करके उठा तो उन्होंने कहा, 'चल रहे हो न?' मैं कुछ न कह सका। समझ में कुछ नहीं आया। वे बोले, बैठो, और मैं गाड़ी में बैठ गया।

हवाई अड्डे से जब गाड़ी चली तो मैंने सोचा कि शायद स्थानीय भक्तों ने चाय-नाश्ते की व्यवस्था की होगी, वहीं जा रहे होंगे। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। थोड़ी देर बाद गाड़ी पटना से बाहर निकल गई और मुंगेर की तरफ बढ़ने लगी। मुझे लगा कि मुंगेर जा रहे होंगे। लेकिन बख्तियारपुर के पास गाड़ी मुड़ी। जब गाड़ी मुड़ी तो स्वामीजी ने कहा, जरा देखें तुम्हारे हाथ। मैं आगे बैठा था और स्वामीजी पीछे। मेरे हाथ पर अपना हाथ रखकर उन्होंने कहा, 'आज से तुम्हारा नाम शंकरानन्द हुआ।' उसी क्षण गाड़ी रेलवे लाइन को पार कर रही थी। फिर उसके बाद गाड़ी जो आगे चली तो हमने भी कुछ नहीं पूछा और उन्होंने भी कुछ नहीं कहा। बस चलते जा रहे थे हम लोग। गाड़ी में थोड़ी मूड़ी रखी थी। जिसको इच्छा होती तो खा लेता था, पानी पी लेता था।

गाड़ी अपनी रफ्तार से चलती जा रही थी। अंत में हम लोग जा पहुँचे धनबाद आश्रम। दो घण्टे वहाँ रुके, फिर वहाँ से चल दिये। रात में झारखण्ड का पूरा जंगल पार करके अगले दिन रायपुर पहुँचे। अभी भी हम कुछ नहीं पूछ रहे थे और वे भी नहीं बता रहे थे। नाश्ता हुआ। उसके बाद फिर वहाँ से चले राजनाँदगाँव। उस समय राजनाँदगाँव में अम्माजी थीं, सत्यव्रत जी नहीं थे। दूसरे दिन हम लोग फिर गाड़ी में बैठे और कार मुंगेर की तरफ बढ़ी। देर रात में गाड़ी मुंगेर पहुँच गई। दूसरे दिन सबेरे नाश्ते के बाद ऐसे ही गपशप करते हुए खड़े थे कि स्वामीजी ने पूछा, 'तुम नहीं जा रहे हो क्या?' मैंने पूछा, 'कहाँ?' स्वामीजी ने कहा, 'पटना।' मैंने पूछा, 'पटना जाना है क्या? आपने तो अब दीक्षा दे ही दी है, मेरा नाम बदल दिया है, तो मैं कहाँ जाऊँ?' स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, नहीं, तुम्हें अभी वापस जाना है। ट्रेन पकड़कर पटना लौटो।'

मैं पटना लौटा और पाँच दिन के बाद दुबारा अपने दफ्तर पहुँचा। वहाँ मुझसे किसी ने नहीं पूछा कि तुम इन पाँच दिनों के लिए कहाँ गये थे। उस समय मैं बहुत जिम्मेदारी वाले पद पर था। विभाग की चेयरमैन एक महिला थीं। उनके साथ मेरा सम्बन्ध बहुत अच्छा था। कुछ भी काम होता तो वे मुझे बुलातीं, विचार-विमर्श होता और ऑर्डर पास किया जाता। परन्तु उन्होंने भी मुझसे नहीं पुछा कि तुम कहाँ थे। इसका रहस्य मुझे आज तक नहीं मालूम। दफ्तर में चेयरमैन के अलावा तीन-चार पदाधिकारी और अनेकों क्लर्क थे, पर उनमें से किसी ने नहीं पूछा कि आप कहाँ थे इन पाँच दिन। इसे गुरु-लीला नहीं तो और क्या कहेंगे।

–13 दिसम्बर 2013, सत्यम् संस्मरण शृंखला, गंगा दर्शन

शिक्षक बनाम गुरु

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

योगविद्या को हम दो भागों में देखते हैं–अभ्यास और जीवनशैली। हठयोग, राजयोग और क्रियायोग, ये सभी अभ्यास के अंतर्गत आते हैं। इन अभ्यासों का एक क्रम होता है जो हठयोग से प्रारंभ होता है ताकि शरीर शुद्ध तथा नीरोग रहे, शरीर में किसी प्रकार का कड़ापन न रहे। जब शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त हो जाता है तब हम राजयोग में प्रवेश करते हैं जिसमें मानसिक स्वास्थ्य और संतुलन के लिये प्रयास किया जाता है। जब मन अपने वश में हो जाता है तब फिर क्रियायोग के अभ्यासों को प्रारंभ किया जाता है जो हमारी आन्तरिक चेतना को जागृत करने में सहायक होते हैं। योग के इस क्रम को जानने और सीखने के लिये एक सक्षम और अनुभवी शिक्षक की आवश्यकता होती है, गुरु की नहीं। आसन-प्राणायाम की शिक्षा गुरु नहीं, शिक्षक देता है। योग में गुरु की भूमिका कब आती है, यह भी जान लेना चाहिये।

जब हम अभ्यास के साथ-साथ अपने जीवन के व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहते हैं, अपने मन को सकारात्मक दिशा में ले जाना चाहते हैं, अपनी जीवनशैली को आध्यात्मिक बनाना चाहते हैं तब गुरु की आवश्यकता होती है। जीवनशैली को आध्यात्मिक बनाने की शिक्षा केवल गुरु देते हैं। वे बतलाते हैं कि अपने व्यवहार, स्वभाव और मन को परिवर्तित करने के लिये क्या करना आवश्यक है। यम-नियम यहाँ पर आते हैं, गुरु के सान्निध्य में। जब तक घर में अभ्यास करोगे, यम-नियम कभी नहीं सध सकता, चाहे कितना ही प्रयास कर लो। एक महीना करके देखो, एक महीना क्या, एक सप्ताह भी घर में तुम अगर किसी एक यम और नियम का पालन करोगे तो खटिया खड़ी हो जायेगी, क्योंकि तुम उसके लिये तैयार हो ही नहीं और न ही वह तुम्हारा लक्ष्य है। तुम्हारा लक्ष्य तो पहले योग अभ्यास द्वारा अपने शरीर और मन को ठीक करना है, जिससे तुम्हारे अंदर आध्यात्मिक रुचि जागृत हो सके। इसके बाद ही तुम्हें गुरु की आवश्यकता होगी, उसके पहले नहीं।

हर व्यक्ति के लिये आध्यात्मिक व्याख्या उसके जीवन के अनुसार अलग-अलग होती है। कुछ लोगों के लिए आध्यात्मिक व्याख्या है ईश्वर-दर्शन, कुछ लोगों के लिए है आत्म-दर्शन तो कुछ लोगों के लिए जीवन में आनन्द और शान्ति की प्राप्ति। लेकिन आध्यात्मिकता मात्र ईश्वर-दर्शन, आत्म-दर्शन या सुख-शान्ति को पाने का उपाय नहीं है, बल्कि यह तो जीवन की एक वृत्ति है। हमलोगों का स्वभाव और व्यवहार वृत्तियों द्वारा ही संचालित होता है। कभी इन वृत्तियों से सुख मिलता है तो कभी दु:ख। प्राय: ये वृत्तियाँ संसार से जुड़ी रहती हैं, इसलिए इन्हें भौतिक वृत्तियाँ भी कहते हैं। ये भौतिक वृत्तियाँ मन को बाहर की ओर, इन्द्रिय-विषयों की ओर खींचती हैं। जब तक मन इन्द्रिय-विषयों की ओर खींचा जा रहा है, तब तक जीवन में स्थायी आनन्द और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती। भौतिक वृत्तियों के समाप्त होने पर ही स्थायी आनन्द और शान्ति की स्थिति आती है और हमारे जीवन में एक नई वृत्ति का जन्म होता है जिसे ब्राह्मी वृति कहते हैं। इस स्थिति में हम एक नए मानसिक स्वभाव को अपना पाते हैं और उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। हमें अपने जीवन में सात्त्विकता को पाना है और इसके लिये हमें सजग रहना है। जैसे-जैसे हम सात्त्विक स्वभाव को प्राप्त करते हैं हमारी भौतिक वृत्तियाँ ब्राह्मी वृत्ति में परिवर्तित होने लगती हैं और इस अवस्था में गुरु का होना अनिवार्य हो जाता है।

शारीरिक और मानसिक स्तर की समस्याओं को तो एक सक्षम योग शिक्षक ठीक कर सकता है, पर आज विडम्बना यह कि हमारे समाज में योग शिक्षक बहुत हो गए हैं जबकि योग के विद्यार्थी कम हो रहे हैं। सभी विद्यार्थी शिक्षक जो बनना चाहते हैं। हमें खुशी तब होती है जब कोई व्यक्ति योग का विद्यार्थी रहे, शिक्षक नहीं बने। योग के विद्यार्थी रहकर हम जीवनभर अपने आपको उत्तम बनाने का प्रयास कर सकते हैं, लेकिन जहाँ पर शिक्षक बनने की मानसिकता आई, फिर वहाँ पर पैसा भी सामने आ जाता है। हम योग को भौतिकता से जोड़ने लगते हैं, आध्यात्मिकता से नहीं।

बिहार योग विद्यालय में हमलोग शुरू से आज तक केवल योग के मूल और वास्तविक विषय को लेकर चले हैं। बहुत-से लोगों ने कहा कि स्वामीजी, योग के साथ यह चीज भी होनी चाहिए, वह चीज भी होनी चाहिए, लेकिन हम अपने लक्ष्य पर कायम रहे हैं। जब तक मनुष्य का मन एक लक्ष्य पर स्थिर नहीं होता और लोगों के बहकावे में आते रहता है, वह कभी शान्त नहीं होता, चंचल ही रहता है। कोई कुछ कह रहा है तो मन इधर जा रहा है, कोई कुछ कह रहा है तो मन उधर जा रहा है। इन प्रभावों से हमारी आध्यात्मिक चेतना भौतिक चेतना में परिवर्तित हो जाती है और फिर योग का वास्तविक स्वरूप एवं लक्ष्य भी नष्ट हो जाता है। हम तो पिछले पचास सालों से लोगों को योग करते देख रहे हैं, लेकिन

हम से पूछा जाए कि उन लोगों ने अपने जीवन में योग से कितना पाया है तो हम नहीं बतला पायेंगे, क्योंकि आश्रम से बाहर जाकर लोग योग के वास्तविक लक्ष्य को नजरअंदाज कर देते हैं। जब तक व्यक्ति अपने प्रति समर्पित नहीं होता है, अपने संकल्प के प्रति निष्ठावान् नहीं होता है, अपने उद्देश्य के प्रति कर्मठ और पुरुषार्थी नहीं होता है, तब तक वह न तो भौतिक जीवन में कुछ प्राप्त करेगा और न ही आध्यात्मिक जीवन में।

आपमें से जो लोग यहाँ से योग की शिक्षा लेकर जा रहे हैं उन्हें हम अपनी ओर से शुभकामना देते हैं। आप लोगों ने एक अध्याय का अध्ययन किया है, पर अभी बहुत-से अध्याय बाकी हैं। समय आने पर खुद को इन अध्यायों को पढ़ने का एक अवसर अवश्य देना चाहिये ताकि इसकी गहराई को हम भली-भाँति समझ सकें।

–29 मार्च 2015, योग अनुदेशक सत्र दीक्षान्त कार्यक्रम, गंगा दर्शन

गुरु की छाँव में

जिज्ञासु चैतन्यानंद, पटना (यौग अध्ययन में डिप्लौमा, 2014-2015)

आचार्य को विनय से उर में बिठा लूँ,
मैं पूज्य पाद रज को सिर पे चढ़ा लूँ।
हे मित्र! मोक्ष मुझको फलतः मिलेगा,
विश्वास है, यह नियोग अब नहीं टलेगा।

विगत दस महीनों में मुझे जीवन के उत्थान की असीम संभावनाओं का द्वार प्रत्यक्ष दिखाई दिया है। व्यक्ति अनंत ऊँचाइयों को पा सकता है, इस कथन की सत्यता प्रमाणित हो गई। अननुभूत अनुभूत हुआ। अगम्य की ओर मैंने गमन किया। गुरुकृपा की वर्षा द्वारा रिक्त अन्तःकरण तृप्त हुआ।

दस माह की यह अवधि मेरे जीवन का स्वर्णिम काल साबित हुई है। जिस प्रकार कुम्भकार के सान्निध्य में माटी जल धारण योग्य घड़े में परिवर्तित होती है या अनगढ़ पत्थर शिल्पी के स्पर्श से प्रतिमा का रूप धारण करता है, उसी प्रकार आज मैं भी अपने अंदर उस योग्यता का अनुभव कर रहा हूँ जिसके माध्यम से अपना और दूसरों का हित करने में, उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य की प्राप्ति कराने में पूर्ण सक्षम अनुभव करता हूँ।

इन दस महीनों के श्रम के बीच मुझे सही मायने में गुरु के दर्शन हो पाए हैं। इन चर्म-चक्षुओं से तो गुरु के शरीर को ही देखा जा सकता है, मगर उनके हृदय को, उनकी करुणा को, उनके कर्तृत्व को, उनके शिल्प को तो उनकी आज्ञा में ढलकर ही समझा जा सकता है। सत्र के दौरान अपनी क्षमतानुसार, आस्थानुसार उनकी आज्ञा का मैंने पालन किया और अनंत अनुभूतियों को प्राप्त किया। चौबीस घंटों की सेवा से, आज्ञापालन से, कर्मयोग से, कीर्तन-भजन और स्तोत्रपाठ से, चौबीस घंटों के अनुशासन-पालन से मैंने बंधन स्वरूपी मन से मुक्ति प्राप्त करने की विधि जानी है। अपनी इच्छा को गुरु की इच्छा में समर्पित करने के आनन्द को समझा है। आज मैं मुक्त हूँ। सांसारिक आकर्षण या दीनता-हीनता का भाव अब मुझे अपनी तरफ नहीं खींच पाता। मुझे अपने अस्तित्व की गरिमा का आभास हो गया है। अब मुझे परावलंबन की आवश्यकता नहीं। अब मेरे कांधे अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के भार को भी वहन करने में समर्थ हो गये हैं।

प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन थे, मिले सार परमार्थ॥

बस अब मुझे कार्यक्षेत्र में अदम्य साहस के साथ प्रविष्ट होना है। निरंतर गुरु-प्रदर्शित मार्ग में प्रगतिशील होना है। आत्मसंयम को और घनीभूत करना है। ज्ञात तथ्य को प्रमाणित करना है, क्योंकि कहा गया है, 'शब्द सो बोध नहीं, बोध सो शोध नहीं'। अब मुझे शब्द से बोध और बोध से शोध की ओर गमन करना है।

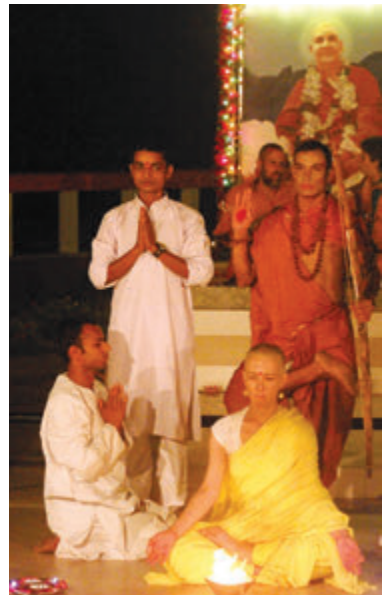

इन दस महीनों में गंगा दर्शन में मेरा जो शिक्षण-प्रशिक्षण हुआ उसमें मैंने किसी कवि की कुछ पंक्तियों को शत-प्रतिशत साकार होते हुए अनुभव किया है, जिन्हें मैं गंगा दर्शन के स्वरूप को समझने के लिए आपके समक्ष रख रहा हूँ।

यह उपाश्रम का परिसर है।
यहाँ पर कसकर परिश्रम किया जाता है, निशि-वासर!
यहाँ पर योग-शाला है।
प्रयोगशाला भी जोरदार!
जहाँ पर, शिल्पी से मिलता है शिक्षण-प्रशिक्षण,
क्षण-प्रतिक्षण।,
जिसका भीतरी जीवन पर,
पड़ता है सीधा असर!
यहाँ पर जीवन का निर्वाह नहीं,
निर्माण होता है,
इतिहास साक्षी है इस बात का।
अधोमुखी जीवन,
ऊर्ध्वमुखी हो, उन्नत बनता है।
हारा हुआ भी,
बेसहारा जीवन,
सहारा देने वाला बनता है।

ऐसे आश्रम की छाँव में शिक्षण-प्रशिक्षण पा कर मेरा जीवन धन्य हो गया। जय-जय गुरुदेव!

भर लो घट

सुनी मैंने अन्तर की एक ध्वनि
'जागो शिव!
भरो अपने जीवन का घट
इस अमृत से,
और पिलाओ इसे सबको,
दूँगा मैं तुम्हें वह सामर्थ्य,
ऊर्जा, शक्ति और ज्ञान।'
पालन किया मैंने उस आदेश का,
वह भरता गया घट को
मैं पीता गया, पिलाता गया सबको।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

शिष्य धर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 91, ISBN: 978-81-86336-96-0

अगस्त 2010 के योगदृष्टि सत्संग कार्यक्रम में स्वामी निरंजनानन्द ने गुरु तत्त्व के निरूपण से प्रारम्भ कर, शिष्यत्व के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला। उनके सारगर्भित शब्द हमें अपने भीतर झाँककर यह जाँचने के लिए मजबूर करते हैं कि शिष्यत्व की कसौटी पर हम कितने खरे उतरते हैं, हमारे व्यक्तित्व में कौन-सी क्षमताएँ और कमियाँ हैं, और कैसे हम एक आदर्श शिष्य के गुणों का अर्जन कर अपना उत्थान कर सकते हैं। गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन करने वाले साधक के लिए उच्चतम आदर्श क्या है? आध्यात्मिक मार्ग के सच्चे पथिकों के लिए यह एक आधारभूत प्रश्न रहा है, जिसका उत्तर इन सत्संगों में निहित है।

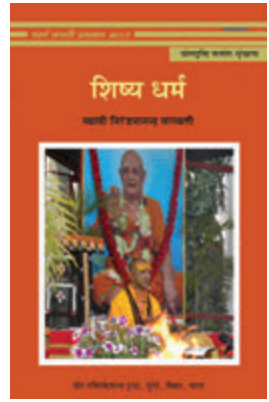

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका की इस आधिकारिक वेबसाइट पर पिछले तीस वर्षों की प्रतियों का संग्रह है। इस निरंतर वर्धमान संग्रह में विभिन्न श्रेणियों की खोज सुविधा भी उपलब्ध है।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

जुलाई 27-30	स्वामी निरंजनानन्द के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015-मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 4-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।